राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय

राधास्वामी गाय कर जन्म सुफल कर ले
यही नाम निज नाम है मन अपने धर ले

प्रेम पत्र राधास्वामी
छठा भाग

जिसको
परम संत सतगुरु हुज़ूर महाराज ने
ज़बान-ए-मुबारक से फ़रमाया

राधास्वामी ट्रस्ट
स्वामी बाग़, आगरा-२८२००५

प्रकाशक
राधास्वामी ट्रस्ट
स्वामीबाग़, आगरा-२८२००५

सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

पाँचवीं बार ५००० | सन् १९८९ | मूल्य : अजिल्द : ७·००
सजिल्द : ९·००

मुद्रक
राष्ट्रीय आर्ट प्रिंटर्स
मोतीलाल नेहरू रोड
आगरा-३

राधास्वामी मौज से प्रेम पत्र जारी।
दृढ़ विश्वास होय चरण में और प्रीति गाढ़ी॥
सुमिरन ध्यान और भजन में नित नया आनन्द पाय।
सतसंगी सब उमंग उमंग राधास्वामी महिमा गाय॥

प्रेमपत्र छठा भाग जोकि सन् १८९८ ई० पहिली मई से, १५ दिसम्बर सन् १८९८ ई० तक, ख़तम हुआ। उसके बचनों का

सूचीपत्र

बचन नम्बर	सुर्ख़ी यानी ख़ुलासा मज़मून बचन	नम्बर सफ़ा
१	पिछले वक़्तों में जीवों का उद्धार, बावजूद तप और जप वग़ैरा के, नहीं हुआ	१
२	काल-कर्म से डरो और कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की ओट गहो और उनके चरणों की तरफ़ भागो	५
३	जब तक संसारी स्वभाव और विकारी अंग मन के घटाये न जावेंगे, तब तक चढ़ाई और ऊँचे देश में ठहरना मुमकिन नहीं है	१३
४	राधास्वामी मत के सतसंगी को अपने उद्धार की निसबत, किसी तरह का शक और सन्देह नहीं करना चाहिए	१९
५	जो राधास्वामी दयाल की सरन में आया है, उसको मौज के साथ मुवाफ़िक़त करना मुनासिब और लाज़िम है	२६

बचन नम्बर	सुर्ख़ी यानी ख़ुलासा मज़मून बचन	नम्बर सफ़ा
६	मालिक के चरणों में प्रीत और प्रतीत करना और बढ़ाना और दुनिया और उसके सामान और दुनियादारों से भाव और प्यार कम करना और घटाते जाना	३२
७	भक्ति-मार्ग और अन्तर-अभ्यास की कमाई की हालत में, कुल मालिक राधास्वामी दयाल को एक-देशी और भी सर्वदेशी मानना चाहिये ...	३७
८	प्रथम जरूरत स्वरूपवान सतगुरु और उनकी प्रीति और प्रतीत की है, तब अरूपी सतगुरु यानी कुल मालिक से मेला होगा	४३
९	वाचक ज्ञानियों का अपने तईं ब्रह्म कहना या मानना ग़लत है	५३
१०	सरन और करनी के वास्ते प्रेम और मेहर दरकार है	५६
११	मालिक घट-घट में मौजूद है	६०
१२	मालिक को भक्ति प्यारी है और भक्ति सत-गुरु की, और किसी की भक्ति मंज़ूर नहीं है	६४
१३	सतसंगियों को सेवा के मुआमले में आपस में क्रोध नहीं करना चाहिए	७०
१४	परमार्थ की चाह मुवाफ़िक दुनिया की चाह के ज़बर होना चाहिए	७५

बचन नम्बर	सुर्ख़ी यानी खुलासा मजमून बचन	नम्बर सफ़ा
१५	सच्चा परमार्थी गुरू के बचन के मुवाफ़िक़ बर्ताव करेगा	७९
१६	जो कोई सचौटी के साथ सतसंग करेगा, उसकी हालत ज़रूर बदलेगी	८५
१७	यह मन मस्त और ग़ाफ़िल है और दुनिया के भोग विलास में बँधा हुआ है	८८
१८	सतगुरु को दीनता पसंद है, सो जो कोई सच्चा दीन होकर उनकी सरन लेवे उसी को पार पहुँचाते हैं	९०
१९	गुरु स्वरूप मालिक की महिमा हरि-स्वरूप से ज़्यादा है	९०
२०	जब तक कि जड़-चैतन्य की गाँठ न खुलेगी तब तक मन विकारी अंगों से थोड़ा-बहुत बर्तता रहेगा	९९
२१	शब्द तुलसी साहब के	१०२
२२	संवाद तुलसी साहब का, साथ फूलदास साधू कबीर-पंथी वग़ैरा के	१७१

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय

प्रेम पत्र छठा भाग

बचन १

पिछले वक़्तों में जीवों का उद्धार बा-वजूद तप और जप वग़ैरा के नहीं हुआ। अब राधास्वामी दयाल अति दया करके, थोड़ी प्रीति उनके चरनों में लाने से, सहज से उद्धार फ़रमाते हैं। बड़भागी जीव उनसे या संत सतगुरु या उनके प्रेमी जन से, किसी न किसी क़िस्म का नाता प्रीति का जोड़ते हैं और अभागी जीव उनके भक्त जन से विरोध या उनकी निंदा करते हैं।

१—पिछले वक़्तों में लोग बहुत मेहनत और काष्टा बाहरमुखी परमार्थी कामों में अपने तन, मन पर धारन करते थे, लेकिन फिर भी सच्चा उद्धार किसी का नहीं हुआ, यानी माया के घेर के पार कोई नहीं गया ॥

२—कोई जप यानी नाम के ज़बानी और स्वांसा के सुमिरन में अटके रहे और कोई तप यानी अनेक तरह की काष्टा देह पर सहते रहे, जैसे पंच अग्नि तपना, जल सैन करना, खड़े रहना या किसी खास आसन से बैठे रहना या उल्टे टँगना या मौन धारन करना और कोई धोती-नेती और बस्ती क्रिया यानी स्थूल शरीर के अन्दर की सफ़ाई रखने में पचते रहे। पर यह सफ़ाई ज्यों की त्यों मुमकिन न थी यानी चौबीस घंटे में फिर ब-दस्तूर मल-मूत्र इन्द्री द्वारों में भर जाता है ॥

३—सिवाय इसके बाज़े लोग बहुत सख़्ती के साथ व्रत धारन करते रहे यानी एक, दो, तीन दिन से लेकर इक्कीस दिन तक और बाज़े इससे ज़्यादा बे खाने-पीने के गुज़ारते रहे और हर चंद भारी तकलीफ़ पाते रहे बल्कि कहीं २ मौत भी हो गई, पर फिर भी इन कामों से वाज़ न आये और आइंदा के जनम में सुख-स्थान के प्राप्ति की आशा पर यह कार्रवाई करते रहे ॥

४—ख़ुलासा यह है कि जो कुछ ऊपर लिखा गया, उससे भी ज़्यादा तकलीफ़ के काम जैसे डंडौती परिक्रमा और हमेशा नंगे बदन रहना और धूप और मेंह और सरदी की बर्दाश्त करना वग़ैरा २ लोगों ने इख़्तियार किये, पर सच्चे मालिक का भेद और पता उनको न मिला और न उसके धाम में पहुँचने की जुगत उनको मालूम पड़ी ॥

५—अष्टाङ्ग योग की जो कि एक मुशकिल अभ्यास प्राणों के साधन का है, बहुत महिमा पिछले जोगीश्वरों और औतारों ने करी, बल्कि उसी को एक खास साधन ब्रह्म पद की प्राप्ति के वास्ते क़रार दिया। मगर यह साधन ऐसा कठिन था कि सिवाय विरले ईश्वर-कोटि मनुष्यों के और किसी से दुरुस्त और पूरा न बना और इस वास्ते सब के सब नीचे के देश में रहे और ब्रह्म पद तक न पहुँच सके ॥

६—ऐसी हालत जीवों की देख कर कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल ने अति दया करके संत सतगुरु रूप धारन किया और सहज जुगत जीव के उद्धार की, सुरत-शब्द मार्ग की कमाई से प्रघट करी ॥

७—हरचंद सुरत और मन का घट में चढ़ाना शब्द के वसीले से कुछ आसान काम नहीं है यानी इसके वास्ते भी वैराग्य संसार और उसके भोगों से, और गहरा अनुराग चरनों में संत सतगुरु और कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के, दरकार है, लेकिन निहायत दया करके

और जीवों को बलहीन और लाचार देखकर ऐसी मौज फ़रमाई है कि जो कोई इस अभ्यास को जिस क़दर उससे बन सके, बराबर करे जावेगा तो राधास्वामी दयाल अपनी ख़ास मेहर और दया के साथ, उसको चौरासी से बचाकर ऊंचे और सुख-स्थान में बासा देंगे और दो या तीन बार जब २ संत सतगुरु इस लोक में प्रगट होवें, उसको नर देही देकर और सतसंग में शामिल करके और कमाई करा के, निज घर में पहुँचाते हैं ॥

८—ऐसी भारी दया जीवों पर आज तक कभी नहीं हुई और न किसी दूसरे की ऐसी ताक़त है कि इस क़िस्म की दया कर सके। यह काम कुल्ल मालिक और सर्वसमर्थ राधास्वामी दयाल का है कि अपनी मौज से जैसे चाहें आसान से आसान तरकीब के साथ जीवों का उद्धार फ़रमावें। किसकी ताक़त है कि इस दया का शुकराना अदा कर सके या उनकी दया और बख़शिश के मुवाफ़िक़ करनी कर सके।

९—अलावा इसके कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल ने और एक निहायत आसान तरकीब जीवों के उद्धार के वास्ते जारी फ़रमाई कि जिससे हर एक क़िस्म का जीव, चाहे उससे सतसंग और अभ्यास भी कम बनता होवे या जैसा चाहिये दुरुस्त न बन सके, तो भी वह थोड़ी-बहुत दया और उसके मुवाफ़िक़ उद्धार का अधिकारी हो सक्ता है यानी उसके उद्धार का सिलसिला जारी हो कर एक दिन वह धुर मक़ाम में पहुँचने के लायक़ बन सक्ता है ॥

१०—वह आसान तरकीब यह है कि जीव कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के सतसंग की महिमा सुनकर, उनके चरनों में थोड़ी-बहुत प्रीति लावें और मुहब्बत का नाता उनसे और उनके सतसंग से जोड़ें। जिस क़दर प्रीति जिसको चरनों में और

सतसंग में आवेगी, उसी क़दर उसके अंतर में सफ़ाई होती जावेगी और नाम यानी हिरदे में चरन बसते जावेंगे यानी याद बढ़ती जावेगी ॥

११—यह प्रीति आहिस्ते २ और दुनिया की प्रीतों को घटावेगी और बढ़ती २ इस क़दर तरक़्क़ी पकड़ेगी कि गहरा प्रेम चरनों का जीव के हिरदे में पैदा हो जावेगा और सब तरफ़ से आहिस्ते २ हटा कर एक दिन निज धाम में पहुँचावेगा ॥

१२—जिसके हिरदे में थोड़ी से थोड़ी भी प्रीति राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की पैदा हुई है, वह भी चौरासी से बचा लिया जावेगा और सुख-स्थान में बासा पावेगा और तीन-चार जनम संत सतगुरु की मौज और दया से धारन करके वह भी एक दिन निज धाम में पहुँचा दिया जावेगा ॥

१३—अब ख़्याल करो कि लोग दुनिया में अनेक जगह और अनेक जीवों से किसी न किसी दरजे की प्रीति कर रहे हैं, तो उनको थोड़ी-बहुत प्रीति राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के चरनों में लाना कुछ मुश्किल बात नहीं है, क्योंकि प्रीति करना और उसके मुवाफ़िक़ व्यवहार बर्तना वे अच्छी तरह से जानते हैं ।

१४—अब ग़ौर का मक़ाम है कि राधास्वामी दयाल ने किस क़दर आसान तरीक़ा, अलावा सतसंग और अभ्यास के, वास्ते उद्धार आम जीवों के जारी फ़रमाया है । जो ज़रा भी दीनता के साथ प्रीति करे, वही उद्धार का अधिकारी हो सक्ता है ॥

१५—सिवाय इसके और ज़्यादातर दया कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल ने इस तरह पर फ़रमाई है कि जो कोई उनसे या संत सतगुरु से प्रीति न कर सके, लेकिन उनके सच्चे सतसंगी यानी प्रेमी सेवक से किसी तरह पर प्रीति करे यानी रिश्तेदार होकर अपने रिश्ते के मुवाफ़िक़

मुहब्बत करे या उसकी भक्ति देखकर परमार्थी प्रीति करे तो उसकी प्रीति का फल उसको थोड़ा-बहुत वैसा ही मिलेगा, जैसा कि राधास्वामी दयाल के चरनों में प्रीति करने से हासिल होता। अब इस दया का विचार करो कि कहीं वार-पार नहीं है कि बग़ैर करनी के भी जीवों को मेहरी जीवों के ग़ोल में शामिल करके, आइंदा को विशेष मेहर और दया यानी पूरे उद्धार के लायक़ बनाते हैं। ऐसी मेहर जीवों पर कभी नहीं हुई और न कोई दूसरा सिवाय कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के कर सकता है॥

१७—जो कोई इस क़दर आसानी और निहायत दरजे की दया की, जो जीवों पर इस ज़माने में फ़रमाई गई है, क़दर न करे और बख़्शिश न लेवे तो जानना चाहिये कि वह जीव अभागी है। और जो जीव कि बजाय भाव और प्रीति करने के कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल या उनके सतसंगियों से विरोध रक्खे या उनकी निन्दा करे तो उसको जानना चाहिये कि वह महा अभागी है और इस जनम में और आइंदा महा कष्ट और कलेश भोगेगा। मगर फिर भी दया उसको थोड़ा-बहुत डंड पाने के बाद सच्चे रास्ते पर लाकर उद्धार का अधिकारी बनावेगी॥

———

बचन २

काल-करम से डरो और कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की ओट गहो और उनके चरनों की तरफ़ भागो॥

१—काल और कर्म बड़े ज़बरदस्त हैं, और इस रचना में भारी ज़ोर इनका है।

२—ये जीवों को अनेक रीति से दुख पहुँचाते हैं और सख़्त मुसीबत

में उनको गिरफ़्तार करते हैं, जहाँ किसी का बल और चतुराई किसी तरह की मदद नहीं कर सक्ती ॥

३—जिस २ रीति से यह काल और कर्म जीवों को सताते हैं, उसकी थोड़ी सी शरह लिखी जाती है ॥

आफ़त आसमानी जैसे (१) बे वक़्त या बहुत ज़्यादा बारिश (२) बे वक़्त या ज़्यादा ओले का बरसना (३) बे वक़्त या ज़्यादा बर्फ़ का बरसना (४) भूचाल (५) तूफ़ान, हवा या पानी का (६) मरी या सख़्त वबा (७) बिजली का गिरना (८) बारिश बिल्कुल न होना या अकाल का पड़ना ।

आफ़त दुनियावी

(१) रोग यानी देह की अनेक क़िस्म की बीमारियां (२) सोग यानी रंज मौत प्यारों का (३) नुक़सान धन और माल व असबाब (४) लड़ाई राजाओं की (५) नुक़सान माल व जान लड़ जाने रेल से (६) नुक़सान माल व जान डूब जाने व टूट जाने जहाज़ों से (७) नुक़सान माल व जान गिर जाने मकानात से (८) नुक़सान माल व जान लग जाने आग से (९) क़ज़िये व झगड़े ब-सबब ना-इत्तिफ़ाकी या क्रोध विरोध और लोभ के (१०) मुफ़लिसी व नादारी (११) ख़राबी मन की और झुकाव उसका नाक़िस सोहबत और बुरे कामों की तरफ़ (१२) नुक़सान जान व माल ब-सबब चोरी व डाकेज़नी ॥

४—यह सब तकलीफ़ें और मुसीबतें जीवों पर समय २ पर, कभी ख़ास और कभी आम तौर से गुज़रती रहती हैं और वे लाचार होकर इनको सहते हैं और हरचंद रोते और पुकारते हैं, पर सिवाय बाज़ी २ हालतों के कोई उनकी मदद किसी तरह नहीं कर सक्ता ।

५—सब लोग ऐसा कहते हैं और समझते हैं कि ये सब तक़लीफ़ें जीवों के पिछले-अगले कर्मों का फल है, पर उन कर्मों को कोई नहीं काट सक्ता और न कोई उनके काटने का जतन या इलाज बतलाता है। इस सबब से जीव निहायत दुखी और निःआसरे रहते हैं॥

६—संत सतगुरु दया करके जुगत और जतन बतलाते हैं। जो जीव उनके बचन की प्रतीत करके और उनके उपदेश को ग्रहण करके दिल-ओ-जान से उसका थोड़ा-बहुत अभ्यास करें और कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में प्रीति और प्रतीत लावें तो आहिस्ते आहिस्ते उनके अगले-पिछले कर्म कट सक्ते हैं और जिन आफ़तों का ज़िक्र हुआ, उनसे किसी क़दर बचाव मुमकिन है॥

७—बचाव की दो सूरतें हैं, और यह ऊपर प्रीति और प्रतीत यानी भक्ति और अभ्यास हर एक शख़्स के मुनहसिर हैं यानी जिस दरजे की भक्ति जिस शख़्स की होगी, उसी क़दर बचाव उसका दोनों सूरतों में हो सक्ता है॥

८—पहिली सूरत यह है कि सख़्ती और भारी मुसीबतें उस पर बिल्कुल न आवें या बहुत कम आवें, और उनमें भी दया की मदद शामिल रहे॥

९—दूसरी सूरत यह है कि चाहे किसी क़िस्म की तकलीफ़ या मुसीबत आवे और ज़ाहिरा उस पर गुज़रती मालूम भी होवे, लेकिन उसके अंतर में उसका असर कम होवे या बिल्कुल न होवे यानी अंतर में प्रेम और दया और मेहर की धारा उसको शान्ति और ताक़त बर्दाश्त की देती रहे॥

१०—सिवाय सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के जो इस लोक में संत सतगुरु रूप धारन करके प्रगट हुए, और भी उनकी जुगत के, और कोई

इलाज काटने कर्मों और दूर करने या घटाने मुसीबतों का क़तई नहीं है और न किसी दूसरे मत में उस जुगत का ज़िक्र या इशारा है ॥

११—जो कुछ जतन या तदबीरें वास्ते दूर करने या घटाने बाज़ तकलीफ़ों के जीव अमल में लाते हैं, वे मामूली और दुनियावी हैं और किसी २ मुआमले में और किसी २ वक़्त थोड़ा-बहुत फ़ायदा भी देती हैं, लेकिन बहुत सी जगह वे तदबीरें कुछ काम नहीं आती हैं ॥

१२—राधास्वामी मत के मुवाफ़िक़ बहुत से कर्म सतसंग और अभ्यास करके काटे और ढीले किये जा सक्ते हैं और बाज़े मेहर और दया से कमज़ोर हो जाते हैं यानी उनका असर कम व्यापता है ॥

१३—यह कैफ़ियत दया और मेहर की सतसंगी जीव की मौत के वक़्त बहुत साफ़ नज़र आती है यानी कर्मों का असर कम व्यापता दिखलाई देता है और मेहर और दया का भारी असर प्रघट नज़र आता है कि जिससे जीव देह छोड़ने के वक़्त निहायत मगन और मसरूर हो जाता है और उस ख़ुशी का निशान उसके चेहरे पर साफ़ दिखलाई देता है ॥

१४—जो कोई इस बात की प्रतीत न करे तो उसको समझना चाहिये कि जिस क़दर दुख-सुख देह और दुनिया का है, वह जीव को ब-सबब उसके बन्धन के व्यापता है। और बन्धन देह और दुनिया के साथ जागृत अवस्था में सुरत के आँख के मक़ाम पर नशिस्त[1] होने से पैदा होता है। जिस किसी को जुगत और तरकीब सुरत को आँख के मक़ाम से सरकाने की मालूम है, और जिस क़दर उसका अभ्यास है, वह उसी क़दर सुरत को हटा कर और चरनों में लगा कर, देह और दुनिया के दुख-सुख से अपना बचाव कर सक्ता है ॥

१–बैठक।

१५—यह बात साफ़ ज़ाहिर है कि स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में, किसी को देह और दुनिया का दुख-सुख नहीं व्यापता। यह ख़राबी सिर्फ़ जागृत अवस्था में है। सो उसके दूर करने का जतन संतों ने यही फ़रमाया है कि जैसे बने, मन और सुरत को शब्द और स्वरूप में लगाकर जागृत के मक़ाम से हटाओ। और यह जुगत, सुरत को हटाने और सरकाने की निज घर की तरफ़, और किसी मत में सिवाय राधास्वामी संगत के जारी नहीं है। फिर ज़ाहिर है कि जो कोई राधास्वामी मत में शामिल होकर और सच्चे मन से प्रीत और प्रतीत के साथ, सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास शुरू करेगा, वही एक दिन हर क़िस्म की तक़लीफ़ और मुसीबत, बल्कि मौत की सख़्ती से, बचकर अपने निज घर में, जो कि कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का धाम और अमर और परम आनन्द का स्थान है, पहुँच कर हमेशा को महा सुखी हो जावेगा ॥

१६—और मालूम होवे कि राधास्वामी दयाल अपने बच्चों की, जो सच्चे होकर उनकी सरन में आये हैं और जिस क़दर बनता है सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास भी कर रहे हैं, अनेक तरह से ख़लासी और छुटकारा काल और माया के जाल से फ़रमाते हैं। यानी अंतर और बाहर सतसंग कराके उनके अगले-पिछले कर्मों का काटना शुरू करते हैं, ताकि जल्दी सफ़ाई होकर सुरत क़ाबिल अपने घर की तरफ़ जाने के हो जावे। और ये कर्म, कटने के वक़्त, कोई कोई अंतर में अभ्यास वग़ैरा के वक़्त और कोई कोई बाहर भक्ति अंग में बरताव के वक़्त, या व्यवहारी और रोज़गारी कारोबार के इज़राय में अपना फल देते हैं। लेकिन राधास्वामी दयाल की दया हमेशा संग रहती है और जिस क़दर और जिस तरह रक्षा और सम्हाल के साथ कर्मों का भुगतवाना मंज़ूर है, उसी मुवाफ़िक़ कार्रवाई अंतर में और बाहर मौज से जारी होती है ॥

१७—जिस किसी के जैसे कर्म हैं, उस मुवाफ़िक़ दुख-सुख भी ज़रूर थोड़ा-बहुत व्यापता है और मन में ख़ौफ़ और घबराहट भी पैदा होती है, लेकिन नतीजा उसका मसलहत से खाली नहीं होता यानी उन कर्मों के भोग में जो चिन्ता और फ़िक्र और ख़ौफ़ या तकलीफ़ थोड़ी-बहुत मन और तन पर गुज़रती है, वह किसी क़दर सफ़ाई और सिमटाव या चढ़ाई मन और सुरत का, या टूटने या ढीले होने कोई कोई बंधन का और उदासीनता पैदा होने का, संसार और उसके पदार्थों से, फ़ायदा देता है ॥

१८—इस तरह पर बहुत से कर्म जो आगे जनम देकर अपना भोग देते, वे संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल की मेहर से, एकही जनम बल्कि कुछ थोड़े ही अर्से में अपना सूक्ष्म फल देकर साफ़ हो जाते हैं। यह बात बग़ैर ख़ास दया और मेहर के हासिल नहीं हो सक्ती यानी मेहरी जीवों में भी जो ख़ास हैं, उनके वास्ते ऐसी जल्दी की जाती है और बाक़ी का हिसाब आहिस्ते २ जिस क़दर उनकी ताक़त बरदाश्त की देखी जाय और जैसी उनकी हालत और संगत और रहनी वग़ैरा होवे, उसके मुवाफ़िक़ तै किया जाता है ॥

१९—सब जीवों को जो राधास्वामी दयाल की सरन में आये हैं, इस बात का यक़ीन करना चाहिये कि वे अति दया करके सब के अगले-पिछले कर्म आहिस्ते २ या जल्द जैसा मुनासिब होगा, काट कर, एक दिन निर्मल करके निज घर में पहुँचावेंगे ॥

२०—और मालूम होवे कि जिस वक़्त राधास्वामी दयाल किसी जीव के कर्म काटते हैं या उसकी सफ़ाई करते हैं, तो जीव को ऐसा नहीं मालूम होता कि उस की सफ़ाई हो रही है, बल्कि दोनों मुआमलों में, चाहे दुनिया का होवे या परमार्थ का,

उस को ऐसा नज़र आता है कि कुछ ख़रावी हो रही है या होने वाली है । बल्कि मामूली तौर व क़ायदे के मुवाफ़िक से भी कार्रवाई कुछ नाक़िस और अबतर मालूम होती है। इस वजह से घबराहट और परेशानी ज़्यादा होती है और दया व मेहर और रक्षा का हाथ बिल्कुल नज़र नहीं आता या ऐसा मालूम होता है कि समर्थ धनी राधास्वामी दयाल, इस वक़्त में मुतलक तवज्जह नहीं फ़रमाते हैं। कहीं थोड़े अर्से बाद जबकि वह कार्रवाई ख़त्म हो जाती है या क़रीब ख़त्म के होती है, अकसर जीव को साफ़ मालूम होता है कि शुरू से अख़ीर तक जो कुछ कि हुआ और जैसा कुछ कि नतीजा निकला, ऐन दया व मेहर से हुआ और उसी में उसका फ़ायदा था।

२१—कभी २ ऐसा भी होता है कि जीव को राधास्वामी दयाल के दया की कार्रवाई की ख़बर भी नहीं होती और वह अपने मन में ऐसा समझता है कि उस पर हर तरफ़ से सख़्ती हो रही है और उसकी बेहतरी के वास्ते राधास्वामी दयाल कुछ तवज्जह नहीं फ़रमाते। बल्कि परमार्थी कार्रवाई में भी कि जिसके वास्ते वह शौक़ के साथ तड़प रहा है, कुछ मदद या तरक़्क़ी नहीं देते लेकिन असल में और ही हाल है यानी हर तरह से परमार्थी कार्रवाई बढ़ा रहे हैं और अनेक रीति से सफ़ाई कर रहे हैं और जीव को उसका भेद और हाल जताना मुनासिब नहीं समझते हैं । हर मुआमले में उनकी मसलहत वेही ख़ूब जानते हैं, जीव की ताक़त नहीं कि उसको फ़ौरन समझ सके, अलबत्ता कुछ अर्से गुज़रने के बाद कुछ २ या थोड़ी समझ समझाये से आ सकती है ॥

२२—हर हालत में सच्चे सतसंगी और सतसंगिन पर फ़र्ज़ है कि जब कुल मालिक राधास्वामी दयाल को सर्व समर्थ और अंतरजामी और अपना मुरब्बी और सतगुरु और मालिक क़रार दिया है, तो चाहे सख़्ती होवे चाहे नरमी या तकलीफ़ होवे या आराम, इस मुआमले में कर्ता-धरता उन्हीं को समझे और माने। और जब उस हालत की पूरी २ बरदाश्त न होवे, तो उन्हीं के चरनों में प्रार्थना वास्ते प्राप्ति दया और ताक़त बरदाश्त के करे और फौरन जवाब न मांगे, कुछ देर इन्तज़ार करे, तब उसको दया की ख़बर थोड़ी-बहुत ज़रूर पड़ेगी ॥

२३—जो किसी वक़्त में ख़ातिरख़्वाह यानी जीव की माँग के मुवाफ़िक़ दया होती मालूम न पड़े और कोई दिन सख़्ती और तकलीफ़ जारी रहे, तो भी समझना चाहिए कि बिल्फ़ेल ऐसी ही मौज राधास्वामी दयाल की है और उसके साथ जैसे बने वैसे मुवाफ़क़त करे। मगर ऐसी सूरत में राधास्वामी दयाल थोड़ी-बहुत ताक़त बर्दाश्त की ज़रूर बख़शेंगे और सख़्ती और तकलीफ़ में कुछ कमी भी ज़रूर होगी ॥

२४—सख़्ती और तकलीफ़ में बचाव की सूरत सिवाय राधास्वामी दयाल के चरनों के और नहीं है। सो जीवों को मुनासिब और लाज़िम है कि अंतर और बाहर उनके चरनों की तरफ़ भागें और ओट लेवें तो थोड़ा-बहुत सहारा ज़रूर मिलेगा ॥

२५—इस मकाम पर एक बात का याद दिलाना सब सतसंगी और सतसंगिनों को मुनासिब मालूम होता है और वह यह है कि जब वे मुवाफ़िक़ क़ायदे भक्ति के, तन, मन और धन जिस क़दर जिससे

बन सका, कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में अर्पन कर चुके, फिर इनके ज़ाहरी या असली घाटे और बाढ़े में, किसी क़िस्म की शिकायत दुरुस्त और सही नहीं हो सक्ती है। लेकिन जो कि इस ज़माने में जीव निहायत निबल और नादारी और दुनिया के बखेड़ों के सबब से सख़्त लाचार हैं, इस वास्ते जो कुछ वे शिकायत करें या मांग मांगें, वह रवा रखी गई है। पर इस क़दर अहतियात चाहिये कि जो किसी मुआमले में उनकी मरज़ी के मुवाफ़िक़ कार्रवाई न होवे, तो अपने मालिक राधास्वामी दयाल से बेमुख और बे-ऐतक़ाद न हो जावें। और जब कि दुनिया के लोग सख़्ती और तक़लीफ़ की जैसे बने रो-पीट कर बरदाश्त और सबर करते हैं, तो सब सतसंगियों पर भी फ़र्ज़ है कि अपने मालिक की मौज समझ कर, जिस क़दर बने उनकी दया का बल लेकर, उसके साथ मुवाफ़क़त यानी उसकी बरदाश्त करें। और वास्ते आइंदा के ख़ास दया और मेहर के उम्मीदवार रहें, क्योंकि सख़्ती के बाद ज़रूर कुछ नरमी होती है, जैसा कि इस कड़ी में कहा है ॥

॥ दोहा ॥

दया भली न असाध की, भली संत की त्रास।
जो सूरज गरमी करै, तो घन बरसन की आस ॥

और राधास्वामी दयाल ने फ़रमाया है कि संतों के क्रोध में भी दात है और मूर्खों की दया में भी घात है।

बचन ३

जब तक संसारी स्वभाव और विकारी अङ्ग मन के घटाये न जावेंगे, तब तक चढ़ाई और ऊँचे देश में

ठहरना मुमकिन नहीं है। इस वास्ते परमार्थी को चाहिये कि सूरमाओं की तरह दया का बल लेकर, मन और उसके दूतों और इन्द्रियों से जूझ कर, मलीन तरंगों को रोके और दूर करे, तब रन जीत कर अपने निज स्थान में पहुँचेगा और सुरत वहाँ से न्यारी होकर सत्तपुरुष राधास्वामी देश की तरफ़ चलेगी ॥

१—जो कि जीव वक़्त पैदाइश से और जब तक कि उनको सतसंग में शामिल होने का मौक़ा मिले, संसारियों के संग में परवरिश पाते हैं और उन्हीं के साथ रोज़ाना बर्ताव और व्यवहार बर्तते हैं, इस सबब से उनमें संसारी आदतें और ख़्वाहिशें भरी रहती हैं और उन्हीं के मुवाफ़िक़ उनका चाल-चलन और ख़्यालात और सोच और विचार होता है।

२—यह संसारी स्वभाव और व्यवहार ख़ुद-मतलबी से भरा हुआ रहता है यानी हर एक शख़्स सिवाय अपने मतलब के दूसरे का कुछ ख़्याल नहीं करता और जैसे बने वैसे अपना मतलब बनाता है, चाहे उसमें दूसरे का नुक़सान हो या फ़ायदा ॥

३—जितने कर्म कि संसारी लोग करते हैं, उनमें से बाज़े ज़रूरी और बहुत से फ़िज़ूल हिर्स करके करते हैं और निहायत अहंकार अपना, उनके करने में, ज़ाहिर करते हैं और बहुत जल्द मतलब के पूरे होने या न होने पर दुखी सुखी हो जाते हैं ॥

४—यह लोग अपने मन के हाल और चाल से बे ख़बर रहते हैं। और दूसरे की कसर जताने को या उस पर तान मारने को

तैयार रहते हैं और ज़रा सी बात पर बे समझे-बूझे जल्द गुस्से में भर आते हैं और शिकवा और शिकायत करने लगते हैं।

५—किसी की निंदा और किसी की स्तुति करना संसारियों का स्वभाव है और यह कार्रवाई अकसर बे तहक़ीक़ात और बिना विचारे हुआ करती है और किसी के हर्ज और नुक़सान का, जो उनको निंदा और स्तुति से पैदा होवे, ज़रा भी ख़्याल नहीं करते॥

६—एक भारी ऐब संसारी मर्दों और औरतों में यह है कि चाहे कोई उनके सामने किसी की कैसी ही बुराई या बदनामी करे, तो उस पर फ़ौरन यक़ीन ले आते हैं और उस अपने यक़ीन के मुवाफ़िक थोड़ी-बहुत कार्रवाई शुरू कर देते हैं और बग़ैर तहक़ीक़ात के, उस बुराई की बात को, हर एक के सामने ज़ाहिर करने में कुछ दरेग़ नहीं करते। जो कोई उस बात को ना-दुरुस्त या झूठा बतलावे, तो उसके कहने को जल्दी सही नहीं मानते॥

७—एक दूसरे की ईर्षा करना और उसकी बड़ाई और तरक़्क़ी को देख कर हसद करना यह भी संसारियों का ख़ास स्वभाव है, चाहे कोई अपना ख़ास अज़ीज़ या रिश्तेदार होवे। बल्कि जहाँ मुहब्बत और रिश्ता है, वहाँ ईर्षा और भीतरी अन-देखनापन ज़्यादा होता है और उसकी चाल-ढाल पर चाहे वह दुरुस्त ही होवे, ज़रूर तान और तंज़ करके कुछ न कुछ ऐब और बुराई निकालते हैं। ख़ुलासा यह है कि अपने से बढ़कर किसी को ख़ुशी के साथ देख नहीं सक्ते॥

८—संसारी जीवों में यह भी स्वभाव ज़बर रहता है कि ज़रा सी तकलीफ़ और सख़्ती में घबरा कर शिकायत मालिक की और जीवों की करने लगते हैं। क्षमा और बरदाश्त बहुत कम रखते हैं और जो तदबीर

उस तकलीफ़ के दूर होने के वास्ते कोई शख़्स बतलावे, उसको फौरन करने को तैयार होते हैं, चाहे वह दीन और दुनिया के क़ायदे के मुवाफ़िक दुरुस्त होवे या नहीं ।।

९—संसारियों को पूरा विश्वास और ऐतक़ाद किसी में नहीं होता । जब तक काम निकलता जाता है तब तक यक़ीन दुरुस्त रहता है और जब किसी काम में खलल पड़े, तब ही एतक़ाद जाता रहता है । मगर कहीं कहीं ख़ौफ़ के सबब से निभाते रहते हैं ।।

१०—अपने बचाव और अपने मतलब के हासिल करने के वास्ते झूंठ बोलने में दरेग़ नहीं करते और जिस किसी से अदावत या बरख़िलाफ़ी हो जावे, तो उस पर झूंठा इलज़ाम या तान लगाने या किसी तरह से उसकी बदनामी कराने मे ख़ौफ़ नहीं करते । मगर यह बात आम नहीं है । आला दरजे के यानी उत्तम लोग ऐसी कार्रवाई नहीं करते और औसत दरजे वाले भी अक्सर ख़ौफ करते हैं ।।

११—जिस सतसंग में मालिक और उसके प्रेम की महिमा या भेद का बर्णन होवे, संसारियों का मन कम लगता है। लेकिन जहाँ क़िस्से और कहनी और लड़ाई और झगड़ों की कथा होवे, उसको बहुत ख़ुशी से सुनते हैं ।।

१२—सच्चे परमार्थ में पैसा खर्च करना नहीं चाहते, मगर जब कभी तकलीफ़ होवे या दिखावे और शोहरत की चाह या कुछ मतलब होवे, तो वहाँ खुशी के साथ खर्च करते हैं ।।

१३—पाखंडी परमार्थियों की महिमा जो कि अनेक तरह के स्वांग बनाकर और अपनी देह को तकलीफ़ देते हैं, बहुत जल्द चित्त में समाती है और वहाँ उमंग के साथ दर्शन और सेवा करते हैं, लेकिन सच्चे परमार्थियों के संग में उनका मन नहीं लगता और न उन पर भाव आता है ।।

१४—यह थोड़ा सा हाल संसारी जीवों के स्वभाव और आदत का (जो संसारियों के संग से पैदा होते हैं) लिखा गया है। जो संतों का सत-संग भाग से मिल जावे, तो यह स्वभाव बहुत जल्द दूर होकर सच्चे भक्त और प्रेमी जन के मुवाफ़िक़ बर्तावा जारी होना मुमकिन है ॥

१५— बगैर संतों और अंतरमुख अभ्यासियों के सतसंग के, संसारी स्वभाव और आदतों का बदलना मुमकिन नहीं है ॥

इस वास्ते हर एक शख़्स को जो अपने जीव का सच्चा कल्यान चाहे, मुनासिब है कि संतों या उनके प्रेमी जन का सतसंग तलाश करके उसमें शामिल होवे, और उनकी दया लेकर अपना भाग बढ़ावे यानी बचन चित्त से सुनकर और उनका मनन करके, थोड़ी-बहुत करनी उनके मुवाफ़िक़ करना शुरू कर दे और उपदेश लेकर अंतर-अभ्यास भी जारी कर दे, तो आहिस्ते आहिस्ते सफ़ाई होती जावेगी और कुल्ल मालिक के चरनों का प्रेम हिरदे में पैदा होता जावेगा ॥

१६—मालूम होवे कि बिना बाहर के सतसंग के, संशय और भरम किसी के दूर नहीं हो सक्ते और न मोटे बंधन जगत के कट सकते हैं और न संसार और संसारियों की प्रीति घट सक्ती है।

१७—जिस किसी को दुनिया का हाल वक़्त पैदायश से मौत तक देख कर, कुछ सोच और विचार मन में आया है और सच्चा फ़िक्र अपने जीव के कल्यान का पैदा हुआ है, वह शख़्स सतसंग के वचनों को बड़ी तवज्जह के साथ सुनेगा और अपने मन के हाल को उनसे मिला कर फ़ौरन फ़िज़ूल और ना-माक़ूल स्वभाव और बंधन को दूर करेगा और इसी तरह अन्तर और बाहर की सफ़ाई हासिल करने के लिए कोशिश करेगा ॥

१८—जब कि सतसंग करके संत सतगुरु और मालिक के चरनों का थोड़ा-बहुत प्रेम हिरदे में जागना शुरू होगा, उस वक़्त अंतर-अभ्यास सुरत-शब्द मार्ग का थोड़ा-बहुत दुरुस्ती से बन पड़ेगा और दया के परचे पाकर प्रीति और प्रतीत चरनों में बढ़ेगी ॥

१९—फिर ऐसे सतसंगी की नज़र में दुनिया और उसका सामान और भोग-विलास ओछे नज़र आवेंगे और दिन २ उनकी तरफ़ से तवज्जह हटकर, परमार्थ की महिमा चित्त में ज़्यादा से ज़्यादा समाती जावेगी ॥

२०—उस वक़्त ऐसे सतसंगी का मन, दया और मेहर का बल लेकर, विघ्न-कारक स्वभाव और तरंगों से जूझ कर उनको दूर हटावेगा या उनका ज़ोर इस क़दर घटावेगा कि फिर वह उसके अभ्यास में ख़लल न डालें ॥

२१—ऐसे सतसंगी पर मेहर और दया संत सतगुरु और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दिन २ बढ़ती जायेगी और उसके साथ ही प्रीति और प्रतीत भी उसके हिरदे में नित प्रति बढ़ती जावेगी ॥

२२—जीव की ताक़त नहीं है कि काल और कर्म और मन और माया से मुक़ाबला कर सके, लेकिन संत सतगुरु और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया का बल लेकर उनको हटा सक्ता है। फिर जिस प्रेमी जन पर ऐसी दया और मेहर है, वही एक दिन माया की हद्द को तै करके, निज धाम में बासा पावेगा और वहाँ हमेशा को सुखी हो जावेगा ॥

———

बचन ४

राधास्वामी मत के सतसंगी को अपने उद्धार की निसबत किसी तरह का शक और संदेह नहीं करना चाहिये। राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से सब कारज उसका दुरस्त बनावेंगे।

१—जिस किसी ने कि राधास्वामी मत धारन किया है और उपदेश लेकर सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास कर रहा है, उसको निसबत अपने पूरे उद्धार के, किसी वक़्त और किसी हालत में किसी तरह का शक और संदेह मन में नहीं लाना चाहिये और न किसी सबब से अपने मन में निरास होना चाहिये॥

२—राधास्वामी दयाल की ऐसी दया और मौज है कि जो कोई उनकी सरन में आया है और सच्चे मन से उनके चरन, वास्ते अपने जीव के कल्यान के, पकड़े हैं, उसकी वे हर तरह से सम्हाल और ख़बरगीरी आप करते हैं। और जिस क़दर भक्ति और भजन उससे बन पड़े, उतने ही को मंज़ूर और क़ुबूल फ़रमा कर अपनी दया की बख़्शिश फ़रमाते हैं, यानी अख़ीर वक़्त पर उसकी सुरत की सम्हाल आप करते हैं और अपने दर्शन देकर और शब्द सुना कर सहज में उसकी सुरत को पिंड से न्यारा करके ऊँचे देश और सुख स्थान में बासा देते हैं। और फिर आइंदा, मुवाफ़िक़ ज़रूरत के, एक दो या तीन बार संग सतगुरु के, नर देही में लाकर और बाक़ी करनी करा कर, निज स्थान में पहुँचाते हैं॥

३—हर चंद कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने कई बार अपने मुख से ऐसा बचन फ़रमाया (और वह कई जगह बानी में लिखा हुआ

मौजूद है) कि जो जीव हमारी सरन में आया है या सच्चे मन से दीन-अधीन हुआ है या जिसने प्रेम के साथ सतसंग और अभ्यास किया है और हमने प्रसन्न होकर उसको अपनाया है, उन सब जीवों का फ़िक्र और ख्याल हम आप रखते हैं और उनसे जैसी और जिस क़दर करनी बन पड़े, करा कर सुख स्थान में और फिर एक दिन उनको निज धाम में पहुँचावेंगे ॥

४—लेकिन मन का ऐसा स्वभाव है कि जब इससे करनी मुवाफ़िक़ हुक्म के, न बन पड़े या तरंगें बिकारी और फ़िज़ूल उठाता रहे, तो फ़ौरन शक और संदेह अपने उद्धार की निसबत, ख़ातिर में लाकर दुखी हो जाता है और डर जाता है कि ऐसी सूरत में सतगुरु राधास्वामी दयाल उसका उद्धार कैसे करेंगे ? और जब अक्सर मन की ऐसी हालत होती रहती है और जीव का बल वास्ते उसकी सम्हाल के पेश नहीं जाता, तब किसी क़दर निरासता चित्त में आ जाती है और ऐसा ख़्याल पैदा होता है कि जब मन में ऐसी नापाकी धरी हुई है और जब-तब संसार और उसके भोगों की तरफ़ झोके खाता है और रोकने से नहीं रुकता, तो वह कैसे क़ाबिल बासा पाने के ऊँचे और शुद्ध स्थान में हो सक्ता है ?

५—ऐसी हालत में चाहे जिस क़दर बचन तसल्ली और दिलासा के सुनाये और समझाये जावें, लेकिन जब तक कि किसी क़दर दुरुस्ती अपने मन की नज़र न आवे या दया ख़ास की वजह से अभ्यास में दुरुस्ती या कुछ तरक़्क़ी मालूम न पड़े, तब तक मन को तसल्ली और संतोष नहीं होता और उसकी हालत सुस्ती और उदासीनता या निरास्ता की नहीं बदलती ॥

६—जब जीव अपनी कसरों को निहारता है और जिस क़दर इसका बल है, उस क़दर कोशिश भी वास्ते दूर करने उनके, करता है, फिर भी वे कसरें ब-दस्तूर क़ायम रहती हैं, तब यह जीव लाचार होकर दया माँगता है और जो वह दया फ़ौरन् प्राप्त न हुई तो निरास हो जाता है ॥

७—लेकिन यह मुक़ाम ग़ौर का है कि जिस क़दर कसरें और विकारी तरगें मन में पैदा होती हैं या धरी हैं, उन सब की जड़ संसारी भोगों की वासना है, जो कि गुप्त या प्रघट मन में बसी हुई है। इस वास्ते जो ऐसे जीव पर पहिले दया की जावेगी, वह वास्ते दूर करने या पूरा करके निकालने वासना के होगी और जब वासना की सफ़ाई हो लेगी, तब कुछ अंतर में अभ्यास की दुरुस्ती या सफ़ाई या तरक़्क़ी नज़र आवेगी । इस सबब से इस क़िस्म के सतसंगी, जब वे प्रार्थना करते हैं और उन पर दया भी होती है अगर उस दया की उनको परख़ नहीं होती, तो वे बेफ़ायदा अपनी अनसमझता से दुखी या निरास होते हैं ॥

८—वासना की पहिचान बड़ी कठिन है। यह इस क़दर झीनी होती है और अंतर के अंतर से बक़्तन् फ़वक़्तन् इक-बारगी जैसे बिजली चमकती है, पैदा हो जाती है। सिवाय ऐसे सतसंगी के जो हर वक़्त अपने मन और इंद्रियों की निगरानी और चौकीदारी करता है, दूसरे की ताकत नहीं कि उसके उत्थान को मालूम कर सके या रोक लगा सके, बल्कि इस दरजे के सतसंगी को भी बाज़ी दफ़े तरंग की ख़बर भी नहीं होती। सबब इसका यही है कि जब तक मन में बारीक से बारीक भी ख़्वाहिश किसी भोग की है, तब तक मन और बुद्धि दोनों

उस भोग की तरंग के उठते ही, उसमें आसक्त होकर बेखबर हो जाते हैं और उस तरंग का रस लेने को उसके संग लिपट जाते हैं ॥

९—इस वास्ते जब तक कि पूरी २ या किसी दरजे तक की सफ़ाई अंतर में नहीं होगी, यानी चित्त संसारी भोग और इंद्रियों के विषयों की तरफ़ से, उनको विघ्न-कारक और अपने भक्ति और अभ्यास की तरक़्क़ी का विरोधी समझ कर थोड़ी-बहुत नफ़रत नहीं करेगा, तब तक वासना और उसके साथ तरंगें नहीं घटेंगी और मन और इन्द्री ऐसी तरंगों के साथ लिपट कर बहते रहेंगे और अभ्यास में ख़लल डालेंगे। और जो अभ्यासी होशियार नहीं है, तो उसको ऐसी हालत अपने मन और इन्द्रियों के बहने की ख़बर भी नहीं पड़ेगी और वह ऐसा ख़्याल करेगा कि मैंने इतनी देर तक बराबर भजन या ध्यान किया। और जो अभ्यासी होशियार है तो वह तरंगों को उठते ही रोकेगा और हटावेगा, लेकिन फिर भी ख़ौफ़ रहेगा कि बाज़ी २ तरंग के साथ उसका मन भी बह जावे और कुछ देर तक ख़बर न पड़े और होश न आवे ॥

१०—ऐसे सतसंगी कम हैं कि जो अपने मन और इन्द्रियों की निगरानी और चौकीदारी कर सक्के हैं, और यह अभ्यास भी कुछ आसान नहीं है यानी कोई अर्से की मश्क़ से यह ताक़त थोड़ी-बहुत हासिल होगी। फिर भी पूरी ताक़त आने को अर्सा चाहिये ॥

११—सच्चे परमार्थी को जिसको अपने जीवन के कल्यान का दिल से फ़िक्र लगा है, मुनासिब है कि सतसंग के वक़्त निहायत चेत कर बचन सुने और उसी वक़्त अपनी हालत से मिलान करता जावे और बाक़ी वक़्त जिस क़दर मुमकिन होवे, अपने मन की

वासना और तरंगों पर निगाह रक्खे कि आया वे मुनासिब हैं या ना-मुनासिब। और जो ना-मुनासिब हैं तो उनको विघ्न-कारक समझ कर, फ़ौरन उठते ही रोके और तरंग की धारा को बहने न देवे, तो अलबत्ता कोई अर्से में मन और इन्द्रियों के सम्हाल की ताक़त किसी क़दर हासिल होना मुमकिन है। यह काम सतसंग के बचनों का असर और नाम और स्वरूप के अभ्यास यानी सुमिरन और ध्यान का बल लेकर दुरुस्ती से बनना मुमकिन है॥

१२—लेकिन ज़्यादा तर दुरुस्ती से यह काम यानी तरंगों का रोकना जब बन पड़ेगा, जब कि मन में भोगों की तरफ़ से किसी क़दर वैराग और ना-मुनासिब बर्ताव का ख़ौफ़ होगा। नहीं तो चौकीदार आप चोर से मिल कर चोरी करावेगा यानी मन और बुद्धि की जिस भोग की तरंग में असक्ति है, लिपट कर चैतन्य धारा को माया की लहरों के साथ बहावेंगे॥

१३—इस जगह पर यह कहना ज़रूर मालूम होता है कि मन और इन्द्रियों की सफ़ाई और समझ-बूझ और बुद्धि की होशियारी, बग़ैर कोई दिन चेत कर सतसंग करने के, हासिल नहीं हो सक्ती। क्योंकि बग़ैर सतसंग के, किसी सतसंगी को इस बात की ख़बर भी अच्छी तरह नहीं हो सक्ती कि उस पर परमार्थ में क्या क्या फ़र्ज़ हैं और कैसे २ उसको परमार्थी यानी भक्ति के मुआमले में बर्ताव करना चाहिये और किस क़दर संसार और उसके सामान से मोह और बंधन तोड़ना या ढीला करना चाहिये, तब सतसंग और अंतर अभ्यास का असर दुरुस्ती से नज़र आवे॥

१४—जो सतसंगी तेज़-फ़हम और विचारवान और रोशन

अक़्ल वाले हैं, वे थोड़े दिन सतसंग करके और परमार्थ की रीति बख़ूबी समझ कर, बानी और बचन को होशियारी से नेम के साथ रोज़ाना पढ़कर, थोड़ा-बहुत सतसंग के मुवाफ़िक फ़ायदा उठा सक्ते हैं यानी अपने मन और इन्द्रियों की सफ़ाई और वासना और तरंगों के रोकने की मश्क़, अपने मकान पर रह कर, कर सक्ते हैं। और ऐसों के संग से, और सतसंगी कम दरजे वाले भी फ़ायदा उठा सक्ते हैं ॥

१५—जिस किसी के दिल में सच्चा शौक़ हासिल करने सच्चे परमार्थ और दर्शन कुल मालिक राधास्वामी दयाल का है, उसकी तबीअत में संसार और उसके भोगों की तरफ़ से किसी क़दर नफ़रत या उदासीनता ज़रूर आवेगी। और यह दोनों यानी चरनों में अनुराग और संसार से बैराग सहज में उसके परमार्थ का कारज बनाते जावेंगे और संत सतगुरु का दर्शन, और भी उनकी मेहर और दया उसको प्राप्त होवेगी ॥

१६—बड़ा भारी फ़ायदा सतसंग का यह है कि वहाँ परमार्थी जीव हर एक दरजे के प्रेमियों की समझ-बूझ और रहनी और बर्ताव देख कर सहज में उनके साथ मिल कर भक्ति के अंगों में बर्त सक्ता है और अभ्यास भी थोड़ा-बहुत दुरुस्ती से कर सक्ता है यानी उसके मन और इन्द्रियों की गढ़त और समझ-बूझ और करनी और रहनी की दुरुस्ती जल्द और सहज में होती चली जाती है ॥

१७—कैसी ही कठिन सेवा होवे या कोई भी मन और इन्द्रियों के मिचाव या रुकाव की हालत होवे, प्रेमियों के ग़ोल में मिल कर परमार्थी असानी के साथ उस सेवा और हालत में बर्त सक्ता है। ऐसे ही समझ-बूझ और गिरफ़्त यानी पकड़ भी प्रेमियों के संग से

सहज में बदल सक्ती है यानी संसार का भाव और मोह कम, और परमार्थ की क़दर और चाह ज़्यादा, हो सक्ती है ॥

१८—इस वास्ते संग की महिमा बहुत भारी है। चाहे संसारी कार्रवाई होवे या परमार्थी, दोनों में संग की मदद से काम दुरुस्ती से बनता है यानी संसारियों के संग से संसारी और परमार्थियों के संग से आदमी परमार्थी बन सक्ता है और इसी तरह जब अन्तर में शब्द का अभ्यास करे, तो शब्द-स्वरूपी सतगुरु से मिल कर आप भी शब्द-स्वरूप हो जाता है ॥

१९—हर एक सतसंगी को चाहिए कि ऊपर के लिखे हुए बचन को विचार कर, जब २ मौक़ा मिले, और चाहे थोड़े दिन के वास्ते होवे, सतसंग में शामिल होकर, और सच्चे परमार्थी और प्रेमियों की हालत देखकर, अपनी समझ और हालत बदलावे। और जब सतसंग प्राप्त न होवे तब राधास्वामी दयाल के बानी-बचन और उसकी शरह और तफ़सील जो दूसरी किताबों में मिस्ल प्रेमपत्र वग़ैरह छपी हुई है ग़ौर और तअम्मुल के साथ थोड़ा सा रोज़ाना पढ़ कर और अपनी हालत की जांच और सम्हाल उसके मुवाफ़िक़ करता रहे। इस तरह से भी सफ़ाई होवेगी और राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की दया से प्रीति और प्रतीत बढ़ती जावेगी और एक दिन कारज पूरा हो जावेगा ॥

२०—जो किसी सतसंगी का चित्त बसबब न मिलने ख़ातिरख़्वाह रस और आनंद के अंतर में, कभी कभी अपनी अनसमझता से दुखी होवे, तो कुछ मुज़ायक़ा नहीं है। यह भिचाव मन का, विरह के जगाने वाला और किसी क़दर सफ़ाई करने वाला है। कोई दिन या थोड़े अर्से ऐसी हालत रहेगी और फिर मेहर और दया से कुछ रस और आनंद

मिल कर मन किसी क़दर खिलेगा और दया के परचे भी मिलेंगे कि जिससे नई प्रतीत और प्रीति जागेगी। इस किस्म का चक्कर अभ्यासियों पर कभी २ आता रहता है ॥

२१—कुल मालिक राधास्वामी सर्व-समर्थ हैं और अपने बच्चों की हर वक़्त निगरानी और सम्हाल रखते हैं। वे कभी किसी को ख़ाली नहीं रक्खेंगे। पर शर्त यह है कि थोड़ी-बहुत लगन या प्रीति उनके चरनों की, सतसंगी के हिरदे में क़ायम होनी चाहिये और सुमिरन, ध्यान, भजन और बानी का पाठ करके, थोड़ी-बहुत याद उनकी हर रोज़ दिल से करता रहे और कभी उनके दरबार से निरास न होवे क्योंकि जैसी दया और मेहर इस समय में उन्होंने जीवों पर करी है और कर रहे हैं, उसका बार-पार नहीं है ॥

२२—परमार्थी जीवों को चाहिये कि जिस क़दर अपनी निबलता और निकामता देखें, उही क़दर समर्थ की सरन दृढ़ करें और चरन मज़बूत पकड़ें। फिर उनके उद्धार में किसी तरह का शक नहीं रहेगा और यह कैफ़ियत उनको ख़ुद अपनी ज़िंदगी में थोड़ी-बहुत मालूम हो जावेगी और अख़ीर वक़्त की हालत सतसंगियों की देख कर या सुन कर पूरा यकीन हो जावेगा कि राधास्वामी दयाल हर तरह से उनकी सम्हाल और रक्षा, वक़्त छोड़ने इस देह के, फ़रमावेंगे ॥

बचन ५

जो राधास्वामी दयाल की सरन में आया है, उसको मौज के साथ मुवाफ़िक़त करना मुनासिब और लाज़िम

है और प्रेमियों से प्रेम-भाव और बाक़ी जीवों से दया-भाव का बर्ताव चाहिये ॥

१—राधास्वामी दयाल कुल मालिक और सर्व-समर्थ हैं। कुल्ल रचना उनके चरनों के अधार से ठहरी हुई है यानी जो धार कि उनके चरनों से आती है और जो कि सत्तलोक से निकसी है, उसी के आसरे दयाल देश और ब्रहमान्ड की रचना की कार्रवाई हो रही है। और इसी तरह जो धारें कि त्रिकुटी और सहस दल कंवल से प्रघट हुई हैं, उनके द्वारे पिंड़ी रचना की कार्रवाई हो रही है। यह सब धारें आपस में एक दूसरे से मदद ले रही हैं, यानी ऊँचे की धार नीचे की धार को मदद दे रही है ॥

२—जब राधास्वामी दयाल वास्ते उद्धार जीवों के, संत सतगुरु रूप धारन करके संसार में आवें, तब जैसी मौज जिन जीवों की निसबत होवे, उसी के मुवाफ़िक धुर से नीचे तक बर्ताव जारी होता है और जब वे अपनी ख़ास अंस को संसार में, वास्ते उपकार जीवों के, छोड़ें या भेजें तब भी जैसी मौज राधास्वामी दयाल की, वास्ते फ़ायदे और उपकार जीवों के, होवे, वह मौज ब-दस्तूर साबिक़ या उसी अंस के द्वारे धुर से नीचे तक जारी होती है। क्योंकि जैसी मौज राधास्वामी दयाल की होवे, वही संत सतगुरु स्वरूप के द्वारे और वही जा-ब-जा रचना में यानी हर एक मक़ाम से जारी होगी और उसमें किसी तरह की कमी-बेशी नहीं हो सक्ती ॥

३—अब समझना चाहिये कि ऐसी सूरत में राधास्वामी मत के सतसंगी को मुनासिब और लाज़िम है कि जैसी मौज जिस समय में जारी होवे, उसके साथ जैसे बने तैसे मुआफ़क़त करे, यानी जो सख़्त होवे तो

उसके बरदाश्त की कोशिश करे और ओ बरदाश्त की पूरी ताक़त न देखे, तो चरनों में संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल के प्रार्थना, वास्ते कम व्यापने सख़्ती या हासिल होने ताक़त बरदाश्त के, करे ॥

४—राधास्वामी मत के सतसंगी को ग़ौर से मुलाहज़ा करना चाहिये कि बग़ैर मौज के साथ मुवाफ़क़त किये, चाहे ख़ुशी से होवे या जबरदस्ती, गुज़ारा नहीं होगा। संसारी जीव रो-पीट कर और बुद्धिमान समझ-बूझ और विचार करके, और प्रेमी जन अपने मालिक यानी भगवंत की मरज़ी और हुकम समझ कर मुवाफ़क़त करते हैं। बाजे कच्चे भक्त शिकवा और शिकायत करने लगते हैं, लेकिन जब मौज की मसलहत समझ में आती है, तब अपने हाल पर शरमिंदा होकर प्रार्थना वास्ते माफ़ी क़ुसूर के, होता है ॥

५—मौज की मसलहत वक़्त पर नहीं जनाई जाती है, वरना मुवाफ़क़त करने में कोई तकलीफ़ न होवे। लेकिन जब सतसंगी का फ़ायदा इसी तरह की कार्रवाई में मंजूर होता है, तब वह मसलहत आइंदा किसी वक़्त मुनासिब पर जताई जाती है और उसी वक़्त यह सतसंगी भी क़ाबिल उसके समझने के होता है ॥

६—जब प्रेमी सतसंगी ऐसी आदत करेगा कि हर काम में मौज को निहारता चले और मौज और दया का ही आसरा और भरोसा रक्खे और जो कुछ करे मौज के आसरे करे और जो कुछ कि दुनिया में हो रहा है या होवे, उसको भी मौज ही का ज़हूरा समझे, तब इसके चित्त में रंज या ग़ुस्सा या विरोध या शिकायत नहीं पैदा होगी। सिर्फ़ जब कि पूरी ताक़त बरदाश्त की न होगी, तो दया के वास्ते प्रार्थना करेगा और मेहर से उसको ताक़त बरदाश्त की मिलेगी ॥

७—जब प्रेमी सतसंगी का संत सतगुरू और राधास्वामी दयाल के चरनों में, इस तरह भाव और प्यार बराबर क़ायम रहेगा, तब प्रेमी सतसंगियों में भी इसकी मुहब्बत बराबर रही आवेगी और बाक़ी जीवों की हालत को दया की नज़र से देखेगा ॥

८—जो सतसंगी कि गृहस्थ आश्रम में है, उसके मन की हालत हमेशा बदलती रहती है, यानी कभी दुखी और कभी सुखी और कभी चिन्ता और फ़िक्र में गिरिफ़्तार रहता है और यह दुख-सुख और चिन्ता चाहे अपनी देह और माल और कर्म के सबब से होवे या दूसरे अज़ीज़ और रिश्तेदार के कर्मों की वजह से आयद होवे, इन दोनों में थोड़ा सा फ़र्क़ रहेगा । लेकिन मौज पर क़ायम होना और उसके साथ मुवाफ़क़त करना बड़ा कठिन मालूम होता है, क्योंकि अपने ऊपर जो हालत गुज़रे, उसकी निसबत तो अपने स्वामी प्रीतम की मौज पर क़ायम रह सक्ता है, लेकिन दूसरे लोगों की निसवत जो भक्ति में नहीं आये हैं, कर्म प्रधान रहेगा यानी वे अगले-पिछले कर्मों का फल भोगते हैं और उसमें कमी-बेशी नहीं हो सक्ती यानी उनको अंतरी सहारा नहीं मिल सक्ता है ॥

९—जो कोई पूरा परमार्थी है यानी जिसका प्रेम और अभ्यास ज़बर है, वह सब हालतों में मौज को सही करता है और सख़्ती और नरमी में चरनों की तरफ़ चित्त जोड़ कर कर्मों के असर से किसी क़दर बचाव हासिल करता है और जिस क़दर उसका मोह घरबार और कुटुम्ब-परिवार में कम है, उसी क़दर इनके सबब से दुख-सुख और चिन्ता भी उसको कम व्यापती है । लेकिन जिसकी परमार्थी हालत ऐसी ज़बर नहीं है, वह अलबत्ता थोड़ी देर के वास्ते झोके और झकोले खा जाता है ॥

१०—खुलासा यह है कि जीव हर तरह से निबल है और अपनी ताक़त से जैसा कुछ कि भक्ति अंग का बर्ताव अंतर और बाहर चाहिये, नहीं कर सक्ता। अलबत्ता संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल की दया से सब काम इससे दुरुस्त बन सक्ते हैं। सो जो कोई सच्चे मन से हर काम में संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल की मौज और मेहर निहारता चलता है, और क्या ज़माना हाल और क्या आइन्दा की कार्रवाई, हर समय में मेहर और दया का भरोसा रखता है और अपनी ताक़त या अहंकार किसी काम में पेश नहीं करता, तो उसकी कुल कार्रवाई की सम्हाल और ख़बरगीरी संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल आप करते हैं, और जो किसी बात में कसर रहे या हर्ज और नुक़सान बाक़ै होवे, वह भी उनकी मौज से समझना चाहिये, जिसकी मसलहत चाहे इसकी समझ में आवे या नहीं, मगर ज़रूर उसमें गढ़त मन की यानी तोड़ने मान और अहंकार और चाह बड़ाई की, मंज़ूर होगी॥

११—कुल मालिक राधास्वामी और संत सतगुरु दयाल हैं और जीवों की निर्बलता और लाचारी की हालत से ख़ूब वाक़िफ़ हैं। जिस क़दर जिससे कार्रवाई परमार्थ की बनती है, उतनी ही को मंज़ूर करके वे दया फ़रमाते हैं और जीव को पूरे उद्धार के हासिल करने के वास्ते हर तरह से मदद देकर, एक दिन उसका काम पूरा बनाते हैं। इस वास्ते किसी जीव को अपनी कसरें या ना-ताक़ती देख कर, उनकी दया की तरफ़ से निरास नहीं होना चाहिये, बल्कि अपने को निर्बल देख कर, उनके चरन ज़्यादा मज़बूती के साथ पकड़ना और सरन को ज़्यादा दृढ़ करना चाहिये। वे ज़रूरत के वक़्त हमेशा इसकी सहायता करेंगे और

जब मुनासिब होगा, उसको उसकी कसर जता कर और अपने बल की मदद देकर, उस कसर को दूर करादेंगे ॥

१२—कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरू के चरनों में प्रेम और निश्चय होने से, प्रेमी सतसंगी के हिरदे में ज़रूर प्यार और भाव उन लोगों की तरफ़ आवेगा, जो राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की भक्ति में आये हैं और उनके चरनों में दिन २ प्रीति और प्रतीत बढ़ाते हैं। ये लोग निज भाइयों से ज़्यादा प्यारे लगेंगे और उनके संग से दिन २ प्रेम-रस और भक्ति-अंग की तरक़्क़ी होगी ॥

१३—प्रेमी परमार्थी कुल रचना में अपने प्रीतम राधास्वामी दयाल की अंसों को व्यापक और कार्रवाई करने वाला देखता है और चाहे उन अंसों की तवज्जह अपने अंसी राधास्वामी दयाल की तरफ़ आई है या नहीं, उसकी नज़र उनकी तरफ़ दया-भाव की रहती है यानी उनके साथ प्रीति और मेल तो नहीं कर सक्ता, लेकिन उनकी हालत पर रहम करता है और मदद देने को वास्ते उनके उबार के, हमेशा तैयार रहता है, और उनसे किसी सूरत से विरोध या असली नुक़सान पहुँचाने या ईज़ा देने का इरादा नहीं करता, चाहे वे अपती अनसमझता से उसके साथ विरोध करें और नुक़सान और तकलीफ भी पहुँचावें। अलबत्ता वह तरकीब कि जिससे ये लोग राह-रास्त पर आवें और सच्चे मार्ग में लग जावें, ज़रूर अमल में लाता है, चाहे धमका कर या ख़ौफ़ दिला कर या कुछ चिन्ता और फ़िक्र पैदा करके या कोई हर्ज और नुक़सान का डर दिखा कर, वग़ैरा वग़ैरा ॥

१४—मालूम होवे कि परमार्थ यानी भक्ति-मार्ग के जारी करने के वास्ते, किसी पर जब्र या ज़बरदस्ती करना या बेजा ज़ोर

डालना या किसी तरह का लालच देना या फुसलाना और बहलाना या उसको नुक़सान देना, किसी सूरत में जायज़ और मुनासिब नहीं है। सिर्फ़ बचन सुनाना चाहिये और जो नुक़सान और तकलीफ़ें ब-सबब अटके और लिपटे रहने के संसार और उनके भोग-बिलास में, पैदा होते हैं उनको जता कर होशियार करना मुनासिब है। जो कोई माने और शौक़ शामिल होने का भक्ति मार्ग में ज़ाहिर करे, उसको मदद देना और जो कोई न माने और हुज्जत और तकरार बेफ़यदा करे, उससे ज़्यादा कुछ न कहना और चुप हो रहना चाहिये और मुन्तज़िर मौज राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के, रहना चाहिये ॥

बचन ६

मालिक के चरनों में प्रीति और प्रतीत करना और बढ़ाना और दुनिया और उसके सामान और दुनियादारों से भाव और प्यार कम करना और घटाते जाना ॥

१—जो कि रचना का रचाव और ठहराव प्रेम यानी खैंच और बनाव शक्ति पर मुनहसिर है, इस वास्ते कुल कामों में प्रथम यही शक्ति प्रघट होकर काम देती है ॥

२—जब तक किसी का किसी तरफ़ झुकाव या लुभाव या बँधाव नहीं है, तब तक वह उस तरफ़ को कभी रुजू या मेल नहीं करता ॥

३—इसी तरह जब तक किसी की चाह या ख़्वाहिश किसी काम या चीज़ की नहीं होती है, तब तक उससे जतन या मेहनत उस काम के पूरा करने या चीज़ के हासिल करने के लिये नहीं बनती ॥

४—ऐसे ही जहाँ दो चार या ज्यादा आदमियों का मेल मिलाप है, वह भी बग़ैर कुल्ल के झुकाव के एक तरफ़ या आपस में एक दूसरे की तरफ़ के नहीं हो सक्ता, चाहे यह मेल और झुकाव क़ुदरती रिश्तेदारी के सबब से होवे या अपने २ मतलब हासिल करने के लिये सब एक जगह जमा होवें, या अपने २ मतलब और स्वारथ के लिए, एक की तरफ़ जहाँ से वह मतलब बनता होवे, रुजू लावें ॥

५—इस तरह दुनिया के कुल काम चाहे वे मामूली होवें, जैसे रोज़गार और व्यापार और व्यवहार या ग़ैर-मामूली होवें, जैसे विद्या और बुद्धि से नई बात, नया इल्म, नई कल, नई चीज़, नया कारख़ाना, नई क़िस्म की कार्रवाई पैदा करना, सब प्रेम यानी खैंच शक्ति से, जिसको चाहे शौक़ कहो चाहे लाग, चाहे इश्क़ चाहे ख़ास स्वभाव और आदत या बंधन और मोह या ख़्वाहिश, चलते और बनते हैं। बग़ैर इस शक्ति के किसी क़िस्म की कार्रवाई गुप्त या प्रघट हो नहीं सक्ती ॥

६—इसी शक्ति यानी प्रेम और लगन के सबब से मनुष्य हर तरह की मेहनत और मशक़्क़त और अनेक तरह की तकलीफ़ और सख़्ती की बरदाश्त करते हैं और कोई क़िस्म का लालच करके (जैसे चाह नामवरी और मान बड़ाई या धन और माल की) जान तक देने को तैयार हो जाते हैं और दे देते हैं ॥

७—यह लगन या शौक़ या चाह या झुकाव और लुभाव संग और सुहबत करके पैदा होता है यानी जिस तरफ़ एक गोल या फ़िरक़े या मजमा या संगियों का झुकाव और शौक है, उसी तरफ़ को उस शख़्स का जो इनका संग करेगा, झुकाव और शौक़ बढ़ता जावेगा ॥

८—यही सबब है कि संसारी लोगों के, जिनकी दुनिया में बहुत

कसरत है, संग करने से हर कोई चाहे लड़की होवे या लड़का, दुनिया की चाहें और लगन दिन २ पैदा करते और बढ़ाते जाते हैं। फिर जो बाद पक्के हो जाने दुनिया के शौक़ और लगन के, जो कोई उनको परमार्थी बचन सुनाये या दुनिया के जाल से निकसने की जुगत बतावे, तो वे उसको तवज्जह के साथ नहीं सुनते, बल्कि अपनी बुद्धि के मुवाफ़िक़ दलील और हुज्जत निसबत बड़ाई और पकाई संसारी शौक़ और लगन के, पेश करके संतों के बचन का ऐतबार नहीं करते ॥

९—दुनिया में लोग इस क़दर लिप्त हो रहे हैं कि उनको इस बात की ख़बर भी नहीं पड़ती कि यह जगह नाशमान और धोखे की है और यहाँ पूरा और ठहराऊ आराम किसी को हासिल नहीं है और न हो सक्ता है ॥

१०—बहुत कम ऐसे जीव हैं कि जो दुनिया की हालत को देख कर और जीवों की ख़राबी और परेशानी मुलाहज़ा करके खोज इस बात की करें कि परम सुख का स्थान कहाँ है और कैसे मिले ॥

११—लेकिन संत सतगुरु कि जो सच्चे कुल मालिक के निज पुत्र और निज मुसाहब हैं, दुनिया के जीवों की ख़राब हालत देख कर, अति दया करके उनसे फ़रमाते हैं कि तुम्हारा निज घर कुल मालिक राधास्वामी के धाम में है और वही परम सुख और अमर आनँद का स्थान है, जहाँ किसी क़िस्म का कष्ट अ रौ क्लेश और जनम-मरन का दुख नहीं है। और यह देश माया और ब्रह्म का है और इन्होंने अनेक तरह की रचना तुम्हारे फँसाने और इसी देश में क़ैद रखने के लिए करी है कि जिससे तुम्हारा छुटकारा मुशकिल हो गया है। जो इस क़ैद से और जनम-मरन के चक्कर और दुख-सुख से (जो देह धर

कर भोगना पड़ता है) छूटना चाहो, तो संत सतगुरु की सरन में आओ। वे आप निज धाम के वासी हैं और तुमको भी वहाँ अपनी दया के बल से पहुँचा सक्ते हैं और ब्रह्म और माया और उनकी रचना के जाल से भी निकाल सक्ते हैं। और जो इस बचन को न मानोगे, तो संसार में ऊँचे-नीचे देश और ऊँची-नीची जोनों में भरमते रहोगे और बारम्बार देह धर कर दुख-सुख और जनम-मरन का कलेश सहते रहोगे ॥

१२—यह बचन ख़ास दया का भरा हुआ कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने, जब संत सतगुरु रूप धारन करके संसार में प्रघट हुए, अपनी ज़बान-ए-मुबारक से फ़रमाया और संत भी जो उनकी निज अंस हैं, यही कहते हैं। जो जीव उनका बचन मानते हैं वे ही बड़भागी हैं और उन्हीं का छुटकारा देह और दुनिया से दिन २ होता जाता है ॥

१३—जो जीव दुनिया के हाल को देख कर परमार्थ की खोज थोड़ी-बहुत करते हैं, उन्हीं का संजोग मौज से ख़ुद संत सतगुरु या उनकी संगत से लगता है और वेही चित्त देकर बचन सुनते और मानते हैं ॥

१४—इसी क़िस्म के जीवों को जिनके मन में डर, मौत और बारम्बार देह धर कर दुख-सुख भोगने का पैदा हुआ है, संत सतगुरु इस तरह पर समझाते हैं कि जैसे दुनिया के कुल काम शौक़ और मेहनत के साथ सरंजाम पाते हैं, ऐसे ही परमार्थ की कारबाई भी यानी अपने निज घर की तरफ़ चलने की तरकीब तब दुरुस्त बनेगी, जब कि सच्चा शौक़ कुल मालिक राधास्वामी दयाल और उनके निज धाम के दर्शनों का मन में पैदा होगा और सच्चा ही ख़ौफ़ जनम-मरन और दुख-सुख के चक्कर में पड़े रहने का मन में जागेगा ॥

१५—यह शौक़ मन और सुरत की तवज्जह को संसार और

संसारियों की तरफ़ से हटाकर, संत सतगुरु और सच्चे मालिक के चरनों में लगावेगा और जिस क़दर रस और आनन्द सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास करके अन्तर में मिलता जावेगा उसी क़दर बन्धन और मोह संसार और उसके सामान का, मन से घटता जावेगा ॥

१६—माया के रचे हुए पदार्थ और इन्द्रियों के भोगों में खैंच-शक्ति बहुत है। हर एक के मन और इन्द्रियों को, वे अपनी तरफ़ मुतवज्जह करके किसी क़दर अपने संग लपेट लेते हैं, यहाँ तक कि फिर उनका छूटना या बंधन का ढीला होना बहुत मुशकिल हो जाता है। इस वास्ते जब तक कि मन और सुरत को कुछ रस और आनन्द विशेष, अंतर में नहीं मिलेगा या उसके प्राप्ति की आसा और चाह दृढ़ न होगी, तब तक संसारी पदार्थों और भोगों की तरफ़ से, चित्त में सच्ची नफ़रत या उदासीनता नहीं आवेगी ॥

१७—यह बात सिर्फ़ संतों के या उनके प्रेमी जन के संग से हासिल हो सकती है क्योंकि इनकी मोहब्बत सर्व-अंग करके कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में लगी हुई है और संसारी सुखों को उन्होंने तुच्छ और नाशमान समझकर छोड़ दिया है या उन में बर्ताव कम कर दिया है ॥

१८—एक सूरत संसार और भोगों की तरफ़ से हटने की यह भी है कि इस शख़्स को कोई सख़्त सदमा या रंज या बीमारी वाक़ै होवे या संसार और भोगों की तरफ़ से किसी क़िस्म का दुख पहुँचा होवे, तो भी लाग ढीली हो जाती है। लेकिन इसका कुछ ऐतबार नहीं है, क्योंकि जब किसी क़िस्म का भारी सुख या माया के पदार्थ विशेष करके प्राप्त होवें, तब रंज और दुख को भूल कर मन और इन्द्रियाँ फ़ौरन संसार और भोगों में बदस्तूर लिपट जाते हैं ॥

१९—इस वास्ते यह हुक्म संतों का क़तई समझना चाहिए कि बग़ैर उनके सतसंग और अंतर अभ्यास सुरत-शब्द मार्ग के, जिस से मन और सुरत ऊंचे देश की तरफ़ चढ़ेंगे, और कोई तरक़ीब हासिल होने सच्चे बैराग की, संसार और उसके भोगों की तरफ़ से, नहीं है ॥

२—संत सतगुरु और प्रेमी जन के सतसंग से दिन २ प्रीति और प्रतीत कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के चरनों में बढ़ती जावेगी और उसी क़दर, और तरफ़ की प्रीति और बंधन ढीले होते और घटते जावेंगे ॥

२१—सच्ची प्रीति का क़ायदा है कि प्रेमी को एक दिन उसके प्रीतम से मिलाकर छोड़ेगी। सो जब कि झुकाव और खिंचाव चरनों में ज़बर होता चला, तो सुरत और मन भी नीचे देश यानी पिंड को छोड़ कर ब्रह्मांड में चढ़ेंगे और फिर वहाँ से सुरत, मन से न्यारी होकर, अपने निज देश में कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में पहुँच कर बासा पावेगी। इसी का नाम सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति है ॥

२२—यह काम जल्दी का नहीं है। आहिस्ते २ बाहर सतसंग और अंतर अभ्यास करके हालत मन और सुरत की बदलती जावेगी यानी चरनों में अनुराग और संसार से वैराग पैदा होता और बढ़ता जावेगा। और एक दिन सुरत, कुल्ल रचना से न्यारी होकर, राधास्वामी धाम में विश्राम पावेगी ॥

बचन ७

भक्ति मार्ग और अन्तर अभ्यास की कमाई की हालत में, कुल मालिक राधास्वामी दयाल को एक-देशी

और भी सर्व-देशी मानना चाहिए, नहीं तो उनके निज धाम में पहुँचना कठिन होगा और यह सिर्फ़ मानन नहीं है, बल्कि हक़ीक़त में सच्चे मालिक का ज़हूरा इसी तौर पर हुआ है ॥

१—जितने मत कि इस वक़्त में दुनिया में जारी हैं, वे सब कुल मालिक को सर्व-व्यापक और सर्व-देशी समझते हैं और इस सबब से उससे मिलने के वास्ते चलना और चढ़ना बहुत कम मानते हैं ॥

२—जो कोई मालिक को सर्व-देशी मानते हैं, तो वे एक ठिकाने पर ध्यान नहीं कर सकते, क्योंकि कोई ख़ास मक़ाम उसका मुक़र्रर नहीं हो सकता है। फिर उनका ध्यान भी जैसा चाहिए दुरुस्त नहीं बन सकता।

३—अक्सर मालिक को आकाशवत व्यापक मानते हैं और आकाश को ही उसका नमूना समझ कर ध्यान करते हैं। या रोशनी का जैसे धूप या चांदनी छाई हुई होती है, ध्यान करते हैं और उसी को चिदाकाश यानी चैतन्य आकाश मानते हैं। यह ध्यान मन के मक़ाम पर, चाहे वह हिरदे का स्थान होवे, या तीसरे तिल या त्रिकुटी में, किया जाता है, बग़ैर भेद मक़ाम और उसके धनी या रास्ते के ॥

४—इस क़िस्म के ध्यान में मन किसी क़दर एकाग्र हो जाता है और रोशनी देख कर आनन्द को प्राप्त होता है। इसी आनन्द में बहुत से ज्ञानी और सूफ़ी मस्त और मगन रहते हैं, पर इस आनन्द के ठहराव का, ख़ास कर सत्संग के वक़्त, पूरा एतबार नहीं हो सकता ॥

५—अब समझना चाहिए कि इस रचना में दो पदार्थ हैं—एक

चैतन्य और दूसरा जड़ यानी माया । इस हिसाब से इनके तीन देश हुए, एक निरमल-चैतन्य देश, एक चैतन्य और माया की मिलौनी का देश और उसमें दो बड़े दरजे हैं यानी शुद्ध-माया देश और मलीन-माया देश । पहिले को ब्रह्मण्ड कहते हैं और दूसरे को पिंड, और तीसरा माया-देश हुआ, जहाँ किसी क़िस्म की रचना नहीं है । इसी मुवाफ़िक़ संतों ने रचना के तीन बड़े दरजे मुक़र्रर किये—पहिला निर्मल-चैतन्य यानी सत्त पुरुष राधास्वामी देश जहाँ चैतन्य ही चैतन्य है और किसी तरह की मिलौनी नहीं है, दूसरा निर्मल-चैतन्य और शुद्ध-माया देश जिसको ब्रह्माण्ड कहते हैं, और तीसारा निर्मल-चैतन्य और मलीन-माया देश जिसको पिंड कहते हैं ।

६—अब विचार करो कि निर्मल चैतन्य देश के निज देश कुल्ल मालिक का है, जहाँ किसी क़िस्म की मिलौनी नहीं है । जो कोई कुल मालिक से मिलना चाहे तो उस देश में जाकर मिले और दूसरे देश में माया की मिलौनी है यानी माया के मसाले के ग़िलाफ़ चैतन्य पर चढ़े हुये हैं और उसका आवरन और परदा हो रहे हैं । इस देश में निर्मल चैतन्य का दर्शन नहीं हो सकता । जब कोई नज़र करेगा तो ग़िलाफ़ नज़र आयेगा । अलबत्ता जिस किसी ने सब ग़िलाफ़ यानी परदों को फोड़ कर और माया के धेर के पार जाकर निर्मल चैतन्य देश में मालिक का दर्शन किया है, वह फिर उसको सर्व देश में देख सक्ता हैं । लेकिन बग़ेर अभ्यास और दूर करने परदों के, कोई दर्शन नच्चे मालिक का नहीं कर सकता । तीसरे दरजे में माया प्रधान है और वहाँ चैतन्य का दर्शन निहायत मुशकिल है ।

७—ऊपर के बचन के मुवाफ़िक़ संतों ने मालिक कुल को एक-

देशी और भी सर्व-देशी कहा है। वग़ैर एक-देशी मानने के चलना और चढ़ना यानी माया की हद् को तै करना नहीं बन सकता और इस वजह से सच्चे मालिक का दर्शन भी नहीं हो सकता। इस से साफ़ ज़ाहिर है कि सिवाय संतों के और किसी ने, जैसा चाहिये, उस मालिक का भेद नहीं जाना और न उसके निज धाम में कोई पहुँचा यानी माया के घेर के पार न गया ॥

८—माया में सिवाय दो बड़े दरजों के और भी कितने ही दरजे हैं और उन्हीं के मुवाफ़िक़ रास्ते में मंजिल या मुक़ाम जिनको चक्र या कँवल कहते हैं, रचे हुये हैं और हर एक मुक़ाम का शब्द जुदा है। जो सच्चे मालिक के दर्शनों का चाहने वाला है, वह भेद रास्ते और मंज़िलों और शब्दों का लेकर और सुरत-शब्द योग का अभ्यास करके सहज में इन मुक़ामों को तै करके माया की हद् के पार पहुँच सकता है और वहाँ सच्चे मालिक का दर्शन पाकर हमेशा को सुखी हो सकता है। लेकिन जिस जगह भेद नहीं है और न रास्ते और मंजिलों का हिसाब है, वहाँ चलना और चढ़ना नहीं बनता और इस वास्ते निर्मल-चैतन्य देश यानी कुल मालिक के धाम में पहुँचना भी मुमकिन नहीं है ॥

९—यही सबब है कि किसी मत में, जो आज कल जारी हैं, भेद सच्चे मालिक का कि वह (१) कौन है (२) कैसा है (३) कहाँ है और (४) कैसे मिले, पाया नहीं जाता और न तरीका चलने और चढ़ने का ऐसा आसान कि जिसका अभ्यास हर कोई कर सके, बयान किया है ॥

१०—अलबत्ता मुक्ति के हासिल करने के वास्ते बहुत-सी तरकीबें

बयान की हैं, मगर वह सब शुभ कर्म में दाख़िल हैं और उनकी कमाई का नतीजा या फल इस ज़िन्दगी में नज़र नहीं आता, यानी बन्धनों की निवृत्ति होती हुई और आज़ादगी का कुछ आनंद मिलता हुआ मालूम नहीं होता ॥

११—योग-शास्त्र में प्राणायाम के वसीले से छः चक्रों का, जो पिंड यानी मलीन-माया देश में वाक़ै हैं, वेधना बयान किया है, मगर यह अभ्यास प्राणों के रोकने और चढ़ाने का ऐसा कठिन और ख़तरनाक है कि किसी से दुरुस्त नहीं बन सक्ता और संजम उसके ऐसे सख़्त हैं कि गृहस्थी से बिल्कुल नहीं बन सक्ते ॥

१२—वेदांत शास्त्र में तीन स्वरूप यानी अवस्था जीव की और तीन स्वरूप ईश्वर के बयान किये हैं और यही छः देही या आबरन समझने चाहिए, लेकिन इन परदों के फोड़ने की जुगत सिवाय प्राणायाम के दूसरी नहीं कही है ॥

१३—कहीं २ मुद्रा का साधन वर्णन किया है। हरचंद वह प्राणायाम के मुवाफ़िक कठिन नहीं है, लेकिन उसकी चाल छः चक्रों के अंतरगत ख़तम हो जाती है, इस सबब से अभ्यासी माया की हद्द में रहता है, पार नहीं जाता ॥

१४—मालूम होवे कि सिवाय संत अथवा राधास्वामी मत के, और किसी मत में पूरा भेद सच्चे मालिक और उसके निज धाम और रास्ते का नहीं है, बल्कि जिसको उन्होंने ईश्वर और परमेश्वर या ब्रह्म और पारब्रह्म और ख़ुदा माना है, उसका भी भेद मक़ाम और रास्ते का साफ़-साफ़ नहीं कहा, और न मिलने की जुगत वर्णन की है ॥

१५—साफ़ २ बचन तो यह है कि जिस मत में दयाल और काल

का भेद नहीं है और निर्मल-चैतन्य देश का जो माया की हद्द के पार है, कुछ ज़िक्र नहीं है, तो वह मत चाहे जैसा होवे, निरंजन यानी काल पुरुष का है और सिद्धान्त उसका माया के घेर में है। इस वास्ते उस मत में पूरा उद्धार जीव का किसी सूरत में मुमकिन नहीं है॥

१६—जो कोई अपना सच्चा और पूरा उद्धार चाहे, उसको चाहिए कि राधास्वामी संगत में शामिल होकर और कुछ दिन सतसंग करके और फिर सुरत-शब्द मार्ग का उपदेश लेकर अभ्यास शुरू करे और सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की सरन दृढ़ करे। वे अपनी दया से उसका कारज सब तरह दुरुस्त बनावेंगे यानी एक दिन निज घर में पहुँचा कर विश्राम देंगे, जहाँ जनम-मरन और देह सम्बन्धी दुख-सुख और कष्ट और कलेश बिल्कुल नहीं हैं और हमेशा आनन्द ही आनन्द है॥

१७—कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने सुरत-शब्द अभ्यास को ऐसा अपनी दया से आसान कर दिया है कि गृहस्थ और विरक्त और स्त्री और पुरुष, जवान और बूढ़े बल्कि लड़के-बाले भी सहज में कर सक्ते हैं और बहुत जल्द उसका फल और फ़ायदा अपने अंतर में देख सक्ते हैं और कोई दिन के अभ्यास के बाद कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया और रक्षा अपनी निसबत अंतर और बाहर परख सक्ते हैं कि जिससे उनको पूरा यक़ीन इस बात का हासिल होगा कि उनके पूरे उद्धार में किसी तरह का शक और शुबहा नहीं है॥

१८—जीव बहुत निबल है और गृहस्थी ख़ास कर अनेक बंधनों और ख़्वाहिशों में गिरफ़्तार रहता है। इस वास्ते उद्धार के लायक़ करनी हर किसी से बन पड़नी निहायत कठिन है। लेकिन राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से, चाहे जिससे जो करनी वे मुनासिब और ज़रूर समझें,

बनवालें और अपनी तरफ़ से बख़्शिश में जीव का कारज बनावें। ऐसी दया आज तक जीवों पर कभी नहीं हुई। और हक़ीक़त में सिवाय कुल मालिक राधास्वामी दयाल के या जिसको वे इख़्तियार बख़्शें, और किसी की ताक़त नहीं है कि ऐसी दया की कार्रवाई कर सके ॥

१९—जो जीव कि राधास्वामी दयाल के सन्मुख आये या उनकी संगत में शामिल होकर और उपदेश सुरत-शब्द मार्ग का लेकर अभ्यास करते हैं, और चरन-शरन दृढ़ करते जाते हैं, उनको महा-बड़भागी समझना चाहिए यानी एक, दो, तीन या चार जनम में वे निज धाम में पहुँच कर बासा पावेंगे और अमर और परम आनन्द को प्राप्त होंगे ॥

बचन ८

प्रथम ज़रूरत स्वरूपवान सतगुरु और उनकी प्रीति और प्रतीत की है, तब अरूपी सतगुरू यानी कुल मालिक से मेला होगा ॥

१—इस दुनिया में सब जीव नाम और रूप में लग रहे हैं और कुल रचना यहाँ की रूपवान है और हर एक रूप का नाम जुदा २ है, चाहे वह चैतन्य है या जड़ ॥

२—जो कोई किसी पदार्थ का भेद सुनावे कि जिस का रूप नज़र नहीं आता या जो अति सूक्ष्म रूप या अरूप है और कोई ख़ास नाम भी उसका नहीं है, तो वह भेद या हाल हर एक की समझ में नहीं

आता, बल्कि उस अनाम पदार्थ की मौजूदगी का भी यक़ीन पूरा २ नहीं होता ॥

३—रचना में बहुत से पदार्थ ऐसे सूक्ष्म रचे गये हैं कि वे इस लोक में मुतलक़ नज़र नहीं आते, सिर्फ़ उनकी कार्रवाई से वे जाने जाते हैं और जिन पदार्थों की कार्रवाई गुप्त है और ख़ास तौर पर जुदा प्रघट नहीं हुई है, उन पदार्थों की किसी को ख़बर भी नहीं है ॥

४—इस दुनिया में कुल रचना स्थूल है और इसका सूक्षम और अति सूक्षम रूप स्थूल के अंतर गुप्त है। जब तक कि कोई उस स्वरूप के मंडल में न पहुँचे और उसकी अंतर दृष्टि न खुले, तब तक वह सूक्षम और अति सूक्षम रूप नज़र नहीं आ सक्ता ॥

५—विद्या और बुद्धिवान लोग दो या तीन दरजे के सूक्ष्म स्वरूप की समझ और कुछ अनुमान कर सक्ते हैं, लेकिन उसके परे के महा सूक्षम स्वरूप और असली अरूप और अनाम पद का कोई अनुमान नहीं कर सक्ता ॥

६—मालूम होवे कि रचना में तीन दरजे बड़े हैं और हर एक दरजे के पेट में छोटे दरजे हैं। ये लोक तीसरे दरजे में है। इस सबब से यहाँ के लोगों को, चाहे विद्या और बुद्धिवान हैं या नहीं, दूसरे और अव्वल दरजे की रचना की ख़बर भी नहीं हो सक्ती ॥

७—बल्कि इसी दरजे के ऊँचे मक़ाम की ख़बर बहुत कम है, क्योंकि सिवाय जोगी के जो प्राणों को चढ़ा कर छठे चक्र के पार गये, और कोई भेद रास्ते और मक़ामों का नहीं जान सक्ता ॥

८—जोगेश्वर ज्ञानी ने प्राण और शब्द का अभ्यास करके, दूसरे दरजे में कई मक़ाम तै किये और उनका भेद अपनी बानी-बचन में

इशारे में कहा, लेकिन पहिले दर्जे का भेद सिवाय संतों के और किसी को मालूम नहीं हुआ क्योंकि संत कुल मालिक के खास मुसाहब हैं और वे उसी धाम से वास्ते उपकार और उद्धार जीवों के तशरीफ़ लाये ॥

९—अब ख़्याल करो कि सब से ऊंचे मक़ाम का, जो कुल मालिक राधास्वामी का धाम है, और भी ब्रह्म और पार-ब्रह्म पद का, जो दूसरे दरजे में वाक़ै है, और भी आत्मा और परमात्मा का जो तीसरे दरजे के ऊंचे मक़ाम हैं, भेद और कैफ़ियत बगैर इन कुल देशों के भेदी और बाक़िफ़कार के किस तरह मालूम हो सक्ता है ? और कुल देश यानी तीनों दरजे के भेदी संत सतगुरु हैं। सो जब तक वे न मिलें, कोई जीव हाल रास्ते और भेद तीनों दरजों और उनके मक़ामों का और जुगत चलने और रास्ता तै करने की जान नहीं सक्ता ॥

१०—जब जो कोई भेदी और वासी पहिले या दूसरे या तीसरे दरजे के, जिनको संत सतगुरु और जोगेश्वर ज्ञानी और जोगी कहते हैं, संसार में आये, उन्होने भेद अपने २ देश का अधिकारी जीवों को समझया और जुगत चलने की, जोगी ओर जोगीश्वरों ने प्राणायाम के वसीले से, और संत सतगुरु ने सुरत-शब्द योग की कमाई से, बतलाई ॥

११—प्राणयाम की जुगत महा कठिन और खतरनाक है और संजम भी उसके निहायत मुशकिल हैं, सो वे किसी से दुरूस्ती के साथ बन नहीं सक्ते यानी विरक्त जीव उसकी कमाई में लाचार और आजिज़ हैं, फिर गृहस्थ जीव और खास कर औरतों की क्या ताकत कि इस अभ्यास को शुरू भी कर सकें ? फिर कोई भी जीव सिवाय चंद ईश्वर-कोटियों के परमात्मा या पारब्रह्म पद तक नहीं पहुँचा ओर सब के सब कर्म और धर्म में अटक कर रह गये ॥

१२—जो कि दूसरा दरजा निर्मल-चैतन्य और शुद्ध-माया का देश हैं और तीसरा दरजा निर्मल-चैतन्य और मलीन साया देश कहलाता है, इस वास्ते जोगी और जोगीश्वर ज्ञानी, जो प्राणायाम का अभ्यास करके तीसरे और दूसरे दरजे के ऊँचे मक़ाम में, जो परमात्म पद और पारब्रह्म पद है, पहुँचे, वे माया के घेर में रहे और उसकी हद्द के पार जो संतों का देश है, न गये । तो फिर उन जीवों का जो तीसरे और दूसरे दरजे के ऊंचे मक़ामों से बेख़बर रहे और चलने और चढ़ने का जतन न उनको मालूम हुआ और न उन्होंने कभी उसका अभ्यास किया, क्या हाल कहा जावे ? यह सब जप, तप और तीर्थ, व्रत और मूर्ति-पूजा और अनेक तरह के कर्मों में, मुवाफ़िक़ उपदेश ब्राह्मणों और भेषों के (जो आप असली परमार्थ से बेख़बर हैं) अटके और फँसे रहे और इस सबब से उनका जनम-मरन और ऊँचे-नीचे देश और ऊँची-नीची जोन में बासा बदस्तूर जारी रहा यानी सच्ची मुक्ति या उद्धार किसी का नहीं हुआ ॥

१३—जब संत सतगुरु प्रघट हुए और उन्होंने सुरत-शब्द योग का भेद प्रघट किया, तब बहुत कम जीवों ने उनके बचन का ऐतबार किया, क्योंकि सब के सब बाहरमुखी कार्रवाई में लगे हुए थे । और जो कि उस वक़्त में प्राणायाम की महिमा विशेष थी, तो संतों की जुगत में भी प्राणों का संग थोड़ा-बहुत लगाकर उसको कठिन कर दिया और उसके फ़ायदे से महरूम रहे ॥

१४—जब ऐसा हाल जगत का देखा कि कोई जीव घर की तरफ़ नहीं चलता और सब के सब चौरासी में बहते और भरमते जाते हैं, तब कुल मालिक राधास्वामी दयाल आप दया करके जगत में प्रघट

हुए और संत सतगुरु रूप धारण करके जीवों को उपदेश सुरत-शब्द मार्ग का (बग़ैर प्राणों के संग के) किया और अपने चरनों में जीवों की प्रीति लगाई और महिमा संत सतगुरु और उनके सतसंग की, बजाय मूर्ति और तीर्थ के, खोल कर सुनाई और कहा कि सतसंग रूपी तीर्थ में स्नान करके यानी बैठ कर बहुत जल्द जीव सफ़ाई अंतर और बाहर की हासिल कर सकता है। और बजाय मूर्ति के जो न बोले और न चाले और न संशय और भरम दूर कर सके, संत सतगुरु के चरनों में प्रीति करने से सुरत और मन अंतर अभ्यास में रस ले सक्ते हैं और ऊँचे देश की तरफ़ चढ़ाई कर सक्ते हैं और जगत से सहज बैराग हासिल हो सक्ता है।

१५—इस बचन को जिन जीवों ने चित्त दे कर सुना और समझा और हित करके माना, उनको बहुत जल्द फ़ायदा अभ्यास का अंतर में मालूम पड़ा और प्रीति और प्रतीत चरनों में जागने और बढ़ने लगी॥

१६—जो अभ्यास कि राधास्वामी दयाल ने बताया, वह इस क़दर आसान है कि लड़का, जवान, बूढ़ा, औरत या मर्द, विरक्त होवें या गृहस्थ, बहुत आसानी से दो-चार बार हर रोज़ कर सक्ते हैं और संत सतगुरु के चरनों में प्रीति भी बहुत आसानी से लगा सक्ते हैं। क्योंकि दुनिया में स्त्री, पुत्र और धन से लगा कर बेशुमार जीवों माल और असबाब में, कम से कम और ज़्यादा से ज़्यादा दरजे की प्रीति करने की सब को आदत है और प्रीति की रीति का बर्ताव भी हर कोई अच्छी तरह से जानता है। कोई बात सिखाने और समझाने की जरूरत नहीं है॥

१७—प्रीति का क़ायदा है कि इकतरफ़ा नहीं बढ़ती, बल्कि उसका एक रस क़ायम रहना भी मुशकिल है। लेकिन जब दोनों तरफ़ होवे, तब बहुत जल्द बढ़ती है और उसका आनन्द और बर्ताव भी दिन २ ज़्यादा होता जाता है। इसी सबब से जो कोई मूर्ति में प्रीति करे, उसका ऐतबार नहीं हो सक्ता, कि न तो वह प्रीति बढ़ती है और न कुछ रस और आनन्द उसका, ख़ास तौर पर प्रीति करने वाले को मिलता है। और जब कोई संत सतगुरु के चरनों में जो कि चैतन्य और समर्थ हैं, प्रीति करे तो वह उलट कर उस पर दया करेंगे और उसकी ताक़त दिन २ बढ़ा कर, गहरा प्रेम चरनों का, अंतर और बाहर बख़्शेंगे। तब हालत इसकी सहज में बदलती जावेगी यानी दुनिया की तरफ़ से वैराग और चरनों में अनुराग बढ़ता जावेगा ॥

१८—जब संत सतगुरु जीव को सतसंग में लगाते हैं और चरनों की प्रीत दृढ़ाते हैं, तब पहिले ही भेद कुल मालिक के स्वरूप का जो उनका भी निज रूप है और हर एक के घट २ में मौजूद है, बतौर उपदेश के समझा कर हिदायत करते हैं कि बाहर और अंतर स्वरूप में बराबर प्रीति लगावे और फिर जिस कदर अभ्यास में तरक़्क़ी होवे, अंतर के स्वरूप में प्रीति बढ़ाता जावे, ताकि एक दिन निज अरूपी स्वरूप से मेला हो जावे ॥

१९—इस वास्ते जो कोई अपना सच्चा छुटकारा और उद्धार चाहे, उसको चाहिए कि संत सतगुरु के सतसंग में शामिल होकर उनके चरनों में गहरी प्रीति करे और बचन उनके चित्त देकर सुने और मनन करके अपनी समझ और पकड़ और रहनी बदलता जावे। तब उनकी मेहर और दया से अंतर में रास्ता तै होना शुरू होगा और रफ़्ता २ माया

के घेर के पार पहुँच कर, कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में विश्राम पावेगा ॥

२०—चैतन्य मूरत संत सतगुरु की है। जो कोई उनसे प्रीति लगावेगा, उसका उद्धार होवेगा और जो कोई पत्थर या धात की बनी हुई मूर्तियों या कोई और निशान या ग्रन्थ में भाव लावेगा और पूजा करेगा, उसको, जिस क़दर तन, मन, धन लगावेगा, उसके मुवाफ़िक़ शुभ-कर्म का फल मिलेगा, पर उद्धार नहीं होगा ॥

२१—मूर्तियों की प्रीति का कुछ ऐतबार नहीं है। अक्सर मूर्त्य औतारों या देवताओं की होती हैं और उनकी लीला-बिलास सुन कर या पढ़ कर, लोग उनमें परमेश्वर का भाव लाते हैं। लेकिन वह मूर्ति उस भाव के ठहराव या तरक़्क़ी में कुछ मदद नहीं देती, बल्कि जब उसके असली स्वरूप की रहनी और लीला-विलास का वर्णन उलटी तरह से किया जावे, तो फ़ौरन मूर्ति और उसके औतार स्वरूप में अभाव आ जाता है और भक्ति जाती रहती है। बर-ख़िलाफ़ इसके, चैतन्य-स्वरूप जो सच्चा गुरु है, संशय और भरम और अभाव वग़ैरा को अपने बचन सुना कर दूर करेगा और अन्तर-अभ्यास करा कर अपने निज रूप में विशेष प्रीति जगावेगा ॥

२२—अब ग़ौर करो कि जब कुल मालिक अनाम और अरूप है और जीव उसकी अंस हैं, तो जब तक कि वे तन, मन और इन्द्रियों से, बल्कि माया के घेर से न्यारे न होंगे और विदेह होकर कुल मालिक के धाम यानी निर्मल चैतन्य देश में जहाँ माया की मिलौनी नहीं है, नहीं पहुँचेंगे, तब तक जनम-मरन और देही के बंधन और कष्ट-क्लेश से छुटकारा नहीं होगा और न परम आनन्द प्राप्त होगा ॥

२३—जीव इस क़दर माया में डूब रहे हैं और भूल और भरम का इस क़दर इस लोक में ज़ोर-शोर है कि किसी को अपने सच्चे माता-पिता कुल मालिक राधास्वामी दयाल और उनके निज धाम की सुध भी नहीं रही। बल्कि जो कोई पता और भेद बतावे और निज घर की याद दिलावे उसके बचन का ऐतबार भी नहीं करते और बजाय मुवाफ़क़त और मुहब्बत के, उस से विरोध बाँधते हैं। फिर किस तरह इन का उद्धार होना मुमकिन है ?

२४—सिवाय कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के, जब वे नर-स्वरूप धारन करके, जगत में प्रघट होवें और सत्त पुरुष राधास्वामी धाम का भेद और तरीक़ा चलने का सुरत-शब्द मार्ग के वसीले से समझावें, और किसी की ताक़त नहीं है कि जीव को इस मार्ग पर चला सके या उस जुक्ति का अभ्यास करा सके। फिर जब इनमें अभाव आया तो कौन सूरत उद्धार की बाक़ी रही ? इसी सबब से कसरत से जीव कुल मतों के, चौरासी में भरम रहे हैं ॥

२५—यह क़ायदा है कि जब तक किसी मक़ाम या इल्म या हुनर का भेदी और वाक़िफ़कार नहीं मिलेगा, तब तक कोई शख़्स उस मक़ाम या इल्म या हुनर को हासिल नहीं कर सक्ता। इस वास्ते जो कोई पूरा उद्धार चाहे, वह जब तक कि माया के पार न जावेगा, तब तक कारज उसका नहीं बनेगा ॥

२६—मालूम होवे कि जब कुल मालिक सब रचना के परे है और आप अनाम और अरूप है, तो जितने नाम और रूप और रचना पैदा हुई, वह उसी अरूप और अनाम की धार या किरनियों से ज़ाहिर हुई। फिर जिस मक़ाम पर कि इस रचना में जीव का क़याम है, वहाँ से

जितनी रचना कि ऊपर है, सूक्ष्म और अति-सूक्ष्म और महा-सूक्ष्म वग़ैरा, सबको तै नहीं किया जावेगा, तब तक उस अरूप से मेल किस तरह हो सक्ता है? इस वास्ते भेद रास्ते और मंज़िल और नाम और रूप का, जो जहाँ २, वक़्त उतार आदि धार के, पैदा हुए, मालूम होना और उसके मुवाफ़िक़ रास्ते का तै होना ज़रूर दरकार है, क्योंकि बग़ैर इस कार्रवाई के किसी अरूप से मिलना नामुमकिन है। और यह भेद सिवाय भेदी और बासी उस देश के, जो संत सतगुरु हैं, दूसरा नहीं समझा सक्ता ओर न रास्ता तै करने में मदद दे सक्ता है॥

२७—इस वास्ते जब तक नर-स्वरूप सतगुरु नहीं मिलेंगे और उनके चरनौं में प्रीति और प्रतीत नहीं आवेगी और दया और मेहर उनकी शामिल नहीं होगी, तब तक कोई जीव निज-घर और सच्चे मालिक का भेद नहीं जान सक्ता और न चलने का जतन शुरू कर सक्ता है और न उस देश में पहुँच सक्ता है॥

२८—अनाम और अरूप, संत सतगुरु का निज-रूप है और वही अरूप, शब्द-स्वरूप हो कर प्रघट हुआ। शब्द भी अरूप और निराकार है और सब जगह और घट २ में मौजूद है। सो उसी शब्द की धुन को पकड़ा कर, संत सतगुरु जीवौं की सुरत को घट में चढ़ा कर निज धाम में पहुँचाते हैं॥

२९—जब तक कि रचना प्रघट नहीं हुई, सिवाय अनाम और अरूप के और कुछ नहीं था और जब मौज रचना की हुई, तब वही अनाम और अरूप की धार शब्द-स्वरूप होकर प्रघट हुई, सो कुल रचना असल में शब्द-स्वरूप है यानी अरूप और निराकर है। यही

शब्द-स्वरूप प्रेमी जीवों को अरूप और अनाम पद में पहुँचावेगा और यही स्वरूप सतगुरु का और सब मक़ामों और पदों का और भी कुल जीवों का है। बाहर से संत सतगुरु शब्द का भेद देकर और जुगत समझाकर, अन्तर में धसाते और चलाते हैं और अन्तर में शब्द-गुरू सुरत को ऊंचे देश यानी निज धाम की तरफ़ खैंच कर और अपना रूप बना कर, कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में पहुँचाता है। इससे ज़ाहिर है कि बग़ैर मदद नर स्वरूप सतगुरू के बाहर से, और दया और मेहर शब्द-स्वरूप सतगुरू के अंतर में, किसी जीव का कारज नहीं बन सक्ता, और यह दोनों स्वरूप एक ही हैं। शब्द-स्वरूप सतगुरू से मिल कर जीव अरूप और अनाम कुल मालिक का थोड़ा-बहुत अनुमान और ध्यान कर सक्ता है, और तरह से उसको कुछ भी समझ अरूप और अनाम की नहीं आ सक्ती। और जिन लोगों ने इसी देश में अरूप और अनाम से मिलना, बग़ैर तै करने रास्ते के और सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यास के, बयान किया है, वे अपनी समझ के अनुसार जड़ या चैतन्य आकाश से मिले और अपनी ग़लती और नादानी से उसी को अरूप और अनाम क़रार दिया। मगर इस तरह कारज उनके जीव का जैसा चाहिए, नहीं बना ॥

३०—मालूम होवे कि हर मक़ाम पर सरूप और अरूप मौजूद है। एक को वाच यानी शब्द-स्वरूप कहते हैं, और दूसरे को लक्ष यानी अरूप और निराकार। लेकिन ये सब रास्ते के लक्ष यानी निराकार स्वरूप, असली अरूप नहीं हैं। इन सब के पेट में बीज-रूप माया और निहायत सूक्ष्म आकार मौजूद है कि वह अभ्यासी के देखने और समझने में नहीं आसक्ता, जब तक कि उससे ऊंचे देश में न चढ़े ॥

३१—मुवाफ़िक़ संतों के बचन के असली अरूप कि जहाँ किसी क़िस्म का आकार बल्कि रेखा भी नहीं है, सब मक़ामों के परे है। फिर जो कोई कि माया की हद्द में, जहाँ-तहाँ के लक्ष स्वरूप को अरुप और अनाम समझ कर या मान कर रह गये, वे किसी काल के बाद फिर रचना में आवेंगे और जनम-मरन के चक्कर से छुटकारा उनका नहीं हुआ। ख़ुलासा यह कि उन्होंने ब-सबब न मिलने संत सतगुरु के धोखा खाया और रास्ते ही में रह गये यानी उनका पूरा उद्धार नहीं हुआ॥

बचन ९

बाचक ज्ञानियों का अपने तईं ब्रह्म कहना या मानना ग़लत है, जब तक कि अभ्यास करके ब्रह्म को अपने घट में प्रघट न करें॥

१—आज कल के ज़माने में ज्ञानी और सूफ़ी जो कि अपने तईं विद्यावान कहते हैं और असल में विद्या पढ़ कर उन्होंने अपना ज्ञान या समझ दुरुस्त की है, अपने तईं और कुल जानदारों बल्कि रचना को ब्रह्म यानी ख़ुदा कहते हैं। यह कहन उनकी सिर्फ़ ज़बानी है, क्योंकि बग़ैर प्राप्ति ब्रह्म के दर्शन के अपने घट में, यह बचन मुख से उच्चारण करते हैं और इस वास्ते वे बाचक ज्ञानी और बाचक सूफ़ी हैं॥

२—यह बचन (कि मैं ब्रह्म हूँ) जो उन्होंने बरमला कहा, वह मुवाफ़िक़ क़ौल सच्चे ज्ञानी और सच्चे सूफ़ियों के, जो ब्रह्म पद में पहुँचे और दर्शन पा कर वहाँ यह बोली बोले, सही है मगर ये लोग

मन और इन्द्रियों के घाट पर बैठे हुए अपने तईं ब्रह्म मानते हैं, यह ख़्याल उनका ग़लत है ॥

३—अफ़सोस का मक़ाम है कि वाचक ज्ञानी और सूफ़ी अपने मन की हालत कभी नहीं परखते, नहीं तो उनको अपनी असली हाल की ख़बर पड़ जाती कि उनका मन कहाँ २ अटका और बँधा हुआ है और ज़रा २ से आराम और तक़लीफ़ में दुखी-सुखी होता है, और तब ये ऐसा बचन कि मैं ब्रह्म हूँ, प्रघट करके न बोलते ॥

४—इसमें कुछ शक नहीं कि ब्रह्म सब जगह मौजूद है, लेकिन इस माया-देश में उस पर कितने ही खोल चढ़े हुए हैं। असल सूरत उसकी गुप्त और पोशीदा है। इस वास्ते जब तक कोई शख़्स अभ्यास करके, उन खोलों या परदों को नहीं फोड़ेगा, तब तक ब्रह्म का दर्शन उसको नहीं मिलेगा ॥

५—सच्चे ज्ञानी ने प्राणायाम का अभ्यास करके और अपने मन और सुरत को छः चक्र के पार चढ़ा कर ब्रह्म का दर्शन पाया। पर प्राणायाम की जुगत ऐसी कठिन और खतरनाक है कि किसी शख़्स और खास कर गृहस्थी और औरतों बग़ैरा से उसका अभ्यास बिल्कुल नहीं बन सक्ता। इस सबब से भेष और गृहस्थी दोनों का उद्धार मुमकिन नहीं ॥

६—जबकि ऐसी हालत जीवों की देखी कि कोई भी निज घर की तरफ़ (जो कुल मालिक का धाम है और जहाँ से आदि में सुरत उतरी) नहीं जाता और सब के सब माया के घेर में भरमते हैं, तब कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने संत सतगुरु रुप धारन करके सहज मारग जीवों के उद्धार का प्रघट किया। इस जुगत को सुरत-शब्द योग

कहते हैं और गृहस्थ और विरक्त और स्त्री और पुरुष इस को ब-आसानी कर सक्ते हैं और फ़ोरन उसका फ़ायदा भी देख सक्ते हैं ॥

७—जो कोई राधास्वामी संगत में शामिल होकर और उपदेश लेकर सुरत-शब्द का अभ्यास शुरू करे, वह एक दिन ब्रह्म पद और फिर माया की हद्द के परे सत्तनाम और कुल मालिक राधास्वामी दयाल का दर्शन अपने घट में कर सक्ता है। घट में दर्शन पाने के बाद फिर पहुँचा हुआ शख़्स कुछ नहीं बोलेगा कि मैं ब्रह्मा हूँ या सत्तपुरुष हूँ या राधास्वामी ॥

८—ब्रह्म पद के प्राप्त होने पर जो कोई वहाँ ठहरेगा, उसका पूरा उद्धार नहीं होगा, क्योंकि माया के घेर में रहने से जनम-मरन का चक्कर, चाहे बहुत देर बाद होवे, नहीं छूटेगा। लेकिन जो कोई सत्तलोक या राधास्वामी पद में पहुँचेगा, वह अमर और परम आनंद को प्राप्त होवेगा ॥

९—इस वास्ते कुल जीवों को और वाचक, सूफ़ी, और ज्ञानियों को ख़ास कर लाज़िम और मुनासिब है कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल की सरन लेकर, सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास शुरू करें, तो एक, दो, तीन, हद्द चार जनम में उनका सच्चा और पूरा उद्धार हो जावेगा। और जो इस बचन को न मानेंगे, तो हमेशा माया के घेर में ऊँचे-नीचे देश और ऊंची-नीची जोन में भरमते रहेंगे। और कच्ची बोली जैसे मैं ब्रह्म हूँ जब तक कि ब्रह्म पद की प्राप्ति न होवे, अपने मुख से न निकालें ॥

१०—और मालूम होवे कि ब्रह्म पद की प्राप्ति भी, सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यास से ही होवेगी। और किसी अभ्यास के वसीले से इस

ज़माने में चढ़ाई मन और सूरत की मुतलक़ बन्द है और न किसी से दूसारा अभ्यास दुरस्ती से बन पड़ेगा ॥

११—मक़ाम नाभि और हिरदे में अभ्यास करके, थोड़ी-बहुत सिद्धि और शक्ति या सफ़ाई और रोशनी और नूर का मुशाहिदा[1] हासिल हो सक्ता है, लेकिन सुरत और मन की चढ़ाई छः चक्र के परे, बग़ैर अभ्यास राधास्वामी दयाल की जुगत के, किसी तरह मुमकिन नहीं है और न इन अभ्यासों में जीव का उद्धार मुमकिन है। बल्कि जो सिद्धि और शक्ति में अटक गया, तो नीचे के दरजे में गिर जावेगा ॥

बचन १०

सरन और करनी के वास्ते प्रेम और मेहर दरकार है ॥

॥ सरन का बयान ॥

१—सरन से यह मतलब है कि सर्व-अंग करके जीव समर्थ के आसरे और उनके चरनों में दीन और अधीन हो जावे और अपना किसी क़िस्म का बल या ताक़त पेश न करे और न उसका अहंकार मन में लावे। बल्कि अपने आप को निहायत निबल और नाकारा देख कर, समर्थ के चरन दृढ़ कर पकड़े और उनकी ओट लेवे और वास्ते अपने उद्धार और उपकार के, सिवाया समर्थ के दूसरी तरफ़ नज़र या ख़्याल या किसी क़िस्म की आसा न लावे ॥

१—देखना।

२—समर्थ से मुराद कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु से है, जो घट २ में मौजूद हैं और संत सतगुरू स्वरूप से बाहर सतसंग और उपदेश करते हैं ॥

३—ऐसी सरन बग़ैर कुछ अर्से संत सतगुरु का सतसंग और अंतर में सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास करने के हासिल नहीं हो सक्ती, यानी पहिले सतसंग करके समझ-बूझ बदलेगी और संसार की पकड़ ढीली होवेगी और अंतर में अभ्यास करके और दया पा कर प्रीति और प्रतीत जागेगी और अंतर और बाहर परचे दया और रक्षा के निरख कर प्रेम पैदा होगा और चरनों में पूरा विश्वास आवेगा ॥

४—जिसको ऐसी सरन प्राप्त है, वह कुल कारोबार में, क्या परमार्थी क्या स्वार्थी, अपने सतगुरु स्वामी की मौज को निहारता है और दया का भरोसा रखता है और फिर मौज से कुल काम उसके थोड़े-बहुत सम्हलते और दुरुस्त होते जाते हैं। और जहाँ-कहीं और जब-कभी कोई काम, इसके मन और चाह के मुवाफ़िक़ नहीं होता, उसमें भी मौज को मुख्य रख कर, उसके साथ जहाँ तक बने मुवाफ़क़त करता है ॥

५—ऐसे सरनवाले की सुरत में शौक, धुर मक़ाम में पहुँचकर, दर्शन कुल मालिक और अपने सच्चे माता-पिता राधास्वामी दयाल का बढ़ता रहता है और उसके साथ ही रास्ता चढ़ाई का खुलता जाता है और प्रेम बढ़ता जाता है ॥

६—यह सरन मेहर और दया से हासिल होती है यानी मेहर और दया से जीव का संजोग सतसंग और सतगुरु के साथ लगता है और सतगुरु के बचन और उपदेश के मुवाफ़िक़ करनी बनती जाती है और

अंतर और बाहर फल भी उसका मिलता जाता है, और दिन २ विश्वास और भरोसा चरनों में कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के बढ़ता जाता है और सरन मज़बूत होती जाती है और प्रेम दर्शनों का जागता और बढ़ता जाता है।

७—जो कोई संतों की जुगत किताबों या किसी और तौर से दरियाफ़्त करके अभ्यास शुरू करेगा और बानी-बचन पढ़ कर और अपनी बुद्धि अनुसार करनी और रहनी दुरुस्त करना चाहेगा और कुल मालिक और संत सतगुरू की दया और मेहर शामिल नहीं है, तो उसका काम नहीं बनेगा, यानी अभ्यास सुरत-शब्द मार्ग का बराबर नहीं कर सकेगा। रास्ते में विघ्न वग़ैरा उसको रोकेंगे और डरावेंगे और अनेक तरह के ख़्याल मन में पैदा करके उसको चंचल और मलीन कर देंगे ताकि अभ्यास उसका रूक जावे और सच्चे रास्ते पर क़दम न रखने पावे ॥

करनी का बयान

८—(१) संत सतगुरू का सतसंग करना और चित देकर बचन सुनना और विचारना और अपनी समझ और दुनिया में पकड़ और रहनी को उनके मुवाफ़िक़ दुरस्त करते चलना। (२) सुरत-शब्द मार्ग का उपदेश लेकर विरह और प्रेम-अंग के साथ अभ्यास करना और अपने मन और सुरत को सचेत कर जिस क़दर बन सके ऊंच देश की तरफ़ चढ़ाना और रस लेना। (३) कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरू के चरनों में प्रेम-पूर्वक भक्ति यानी सेवा और दीनता करना और उनकी प्रसन्नता हासिल करने के लिये जतन मुनासिब करना (४) प्रेमी और भक्त जन से प्रीति के साथ बर्ताव करना और जब मौक़ा मिले, उनकी सेवा मुनासिब करना और बाक़ी जीवों के साथ दया अंग

लेकर के बर्ताव करना। (५) मन में चिंता और फ़िक्र अपने उद्धार की लगी रहे और अपने मन और इन्द्रियों की चाल को निरखता और सम्हालता चले, ताकि पूरे उद्धार में विघ्न न डालने पावें और राधास्वामी धाम में पहुँचने के वास्ते रास्ते में न अटकावें ॥

९—ऐसी करनी बग़ैर मेहर और दया सतगुरू और राधास्वामी दयाल के नहीं बन पड़ेगी, और जिससे बन पड़े वही जीव बड़भागी और मेहरी है ॥

१०—ऐसी करनी-वाला हमेशा अपने चित्त में दीन-अधीन रहता है और अपने मन की कसरों को निहार कर, हमेशा कोशिश वास्ते उनके दूर करने के करता रहता है और संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल के चरनों में प्रार्थना, वास्ते प्राप्ति विशेष दया और मेहर के, जारी रखता है ॥

११—ऐसी करनी-वाला संत सतगुरू और राधास्वामी दयाल की मेहर और दया का सदा गुन गाता रहता है और अपनी बड़-भागता पर हमेशा शुक्र करता है और आइंदा के वास्ते ज़्यादा दया और तरक़्क़ी की आसा रख कर मगन रहता है ॥

१२—वह शख़्स सेवा में होशियार रहता है, और नई २ उमंग प्रेम और सेवा की उठाता है और सच्चे परमार्थियों का हमेशा मददगार रहता है ॥

१३—ऐसे शख़्श को बड़ा ख़्याल इस बात का रहता है कि उसकी प्रीति और प्रतीत चरनों में दिन २ बढ़ती रहे और किसी तरह से उस में घाटा न आवे और जब कभी कोई माया या काल के चक्कर से डिगमिग या रूखा-फीका भी हो जावे, तो बानी और बचन याद करके

या पढ़कर और बेशुमार परचे दया के जो अंतर और बाहर मिले हैं, उनकी सुध लाकर अपने मन को संत सतगुरू की मेहर और दया से जल्द सम्हाल लेता है और अपनी कसर को देखकर शरमाता और पछताता है और आइंदा दया के वास्ते प्रार्थना करता है ॥

१४—ऐसी करनी जल्द रास्ता तै कराती है और एक दिन निज धाम में बासा दिलाती है और संत सतगुरू और राधास्वामी दयाल की हर वक़्त मेहर ऐसी करनी करने वाले परमारथी पर बनी रहती है और उसका कारज बनाती जाती है ॥

बचन ११

मालिक घट २ में मौजूद है, मगर सिवाय गुरू ज्ञानी के दूसरे को इस बास की परख नहीं हो सक्ती है ॥

१—संत मत के मुवाफ़िक़ मालिक हर एक के घट में मौजूद है और ऊंचे से ऊंचा उसका धाम है ॥

२—और मतों के मुवाफ़िक़ भी यह बात सही होती है यानी सब कहते हैं कि मालिक सब जगह मौजूद है। तो जब कि सब जगह मौजूद है, फिर हर एक के घट में भी ज़रूर मौजूद होना चाहिये। लेकिन पता और भेद स्थान का साफ़ साफ़ किसी मत में नहीं बयान किया ॥

३—अलबत्ता हिन्दुओं के मत में इस क़दर खोलकर बयान किया है कि जहाँ चोटी का स्थान है, वही मालिक का निज धाम है और जीव की बैठक नेत्रों में बतलाई है ॥

४—जोगियों ने रास्ते का भेद छः चक्र तक प्रघट किया और जोगीश्वरों ने तीन मक़ाम यानी तीन कंवल, छः चक्र के ऊपर कहे

और सिर्फ संतों ने उसके परे का भेद यानी हाल तीन मक़ाम का जिनको पदम कहते हैं, खोल कर वर्णन किया। और इस ज़माने में कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने, संत सतगुरु रूप धारन करके, बाक़ी के तीन मक़ामों को खोलकर, निज भेद कुल मालिक का प्रघट किया है ॥

५—यह निज भेद और हाल रास्ते और मंज़िलों का और जुगत चलने की निहायत आसान तरीक़े से कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने खोल कर बयान करी है कि जिसको हर कोई औरत और मर्द, लड़का, जवान और बूढ़ा, गृहस्थ होवे या विरक्त, आसानी से कर सक्ते हैं और अपने उद्धार की सूरत सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यास से, थोड़ी-बहुत जीते-जी देख सक्ते हैं ॥

६—यह ऊंचे मक़ामों का भेद और तरीक़ा अभ्यास का और किसी मत में वर्णन नहीं किया गया है और न किसी दूसरे शख़्स को, सिवाय संत सतगुरु और कुल मालिक राधास्वामी दयाल के, मालूम है। इस ज़माने में जीवों पर निहायत दरजे की दया फ़रमा कर कुल मालिक ने आप इस संसार में प्रघट होकर इस भेद को ज़ाहिर किया। जो कोई उनके बचन को माने उसका उद्धार सहज में होता है और नहीं तो हमेशा चौरासी में भरमता रहेगा ॥

७—सिवाय कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरू के, वे लोग जो कि उनके चरनों में भाव और भक्ति के साथ आये और जिन्होंने कोई दिन सतसंग करके, सुरत-शब्द मार्ग का उपदेश लिया, इस गुप्त भेद से जो कि राधास्वामी मत का निज उपदेश हैं, वाक़िफ़ हैं और वे ही गुरू ज्ञानी कहलाते हैं यानी उन्होंने सच्चे गुरू से

ज्ञान पाया और सच्चा गुरू जो शब्द है और घट २ में ऊंचे देश में बोल रहा है, उसका ज्ञान पाया यानी भेद लेकर अभ्यास शुरू किया ॥

८—जीव का असली रूप कई परदों में और इसी देह में गुप्त है। और जो रूप कि बाहर नज़र आता है, वह स्थूल है। और उसके अन्दर सूक्ष्म-रूप है, जिससे जीव स्वप्न देखना है। और फिर उसके अंदर कारण शरीर है, जहाँ पहुँच कर जीव आराम के साथ सोता है या रहता है। इन तीन स्वरूपों के परे जीव का तुरिया-रूप है, जहाँ से धार पिंड में आकर सब शरीरों को चैतन्य करती है ॥

९—जैसे जीव के तीन स्वरूप या अवस्था हैं, ऐसे ही ईश्वर या ब्रह्मा के भी तीन स्वरूप हैं, जिनको माया सबल और साक्षी और शुद्ध या पारब्रह्म कहते हैं ॥

१०—संतों का देश जहाँ कुल मालिक राधास्वामी दयाल का निज धाम है, ब्रह्मा और पारब्रह्म पद के परे और बहुत दूर है। फिर ख़्याल करो कि जो लोग मालिक को, बाहर मूर्तों और तीर्थों और पिछले महात्माओं के निशानों और ग्रन्थों और मकानों और दरियाओं और कुओं पर ढूंढ़ते हैं, वे किस क़दर भूल और भरम में पड़े हैं और उनका कभी थल बेड़ा नहीं लगेगा ॥

११—जब कि जीव का असली रूप साफ़, देह में गुप्त मालूम होता है और ईश्वर और मालिक कुल को जो सब जगह मौजूद बताते हैं, वह सरीह घट में गुप्त मालूम होता है, फिर उन लोगों की समझ और अक़्ल की निसबत जो कि आप बाहर भरम रहे हैं और दूसरे जीवों को भी बाहर भरमाते हैं, सिवाय अफ़सोस के क्या कहा जावे

कि ज़रा भी सोच और विचार नहीं करते और न अपनी करतूत के नफ़े और नुक़सान को मुलाहिज़ा करते हैं, सिर्फ़ टेकियों और अंधों और नादानों की तरह पिछली चाल को चला रहे हैं। और जो कोई उनके फ़ायदे की बात सुनावे यानी मुवाफ़िक़ राधास्वामी मत के, अंतर के भेद और असली स्वरूप का ज़िक्र करे, तो मुतलक़ तवज्जह नहीं करते, बल्कि दूर भागते हैं। यह उनकी अभागता का निशान है कि नक़ल और भरम में ही पड़े रहना चाहते हैं ॥

१२—ये टेकी और संसारी लोग हरचंद ज़ाहिर में कृष्ण और राम और विष्णु और शिव और शक्ति की मूर्तों के पुजारी और भक्त नज़र आते हैं, लेकिन हक़ीक़त में उन देवताओं और औतारों के असली स्वरूप के (जो उनके घट में मौजूद है) दुश्मन हैं। क्योंकि जो कोई उसका भेद और पता और महिमा उनको सुनावे, उसको मूर्तों का निन्दक कहते हैं और उसके बचन को ज़रा भी तवज्जह करके नहीं सुनते, बल्कि उसके साथ दुश्मनी और फ़िसाद करने को तैयार होते हैं। अब ख़्याल करो कि ये लोग ब्रह्म और उसके औतार स्वरूप और देवताओं के दुश्मन हैं कि भक्त ? और इन का उद्धार किस तरह होगा ?

१३—भागवत के एकादश स्कन्ध में साफ़ लिखा है कि सच्चे कृष्ण अपने भक्त ऊधो को, बग़ैर जोग अभ्यास के, परम धाम में नहीं पहुँचा सके। फिर मूर्त कृष्ण, टेकी पुजारियों को क्या दे सक्ती है, ख़ास कर उस हालत में जब कि इन लोगों को उसके असली स्वरूप से विरोध है ? इस वास्ते सब मूर्ति-पूजा वाले सिवाय उनके कि जो भोले और अंतर में सच्चे हैं और असल स्वरूप से मिलने का हिरदे में शौक़

रखते हैं, चौरासी में चले जाते हैं, और ऊंच-नीच देह, नीच-ऊँच देश में धारन करके अपनी करनी का फल भोगते हैं ॥

१४—जो भोले और सच्चे भक्त हैं और अनजानता के सबब से मूर्ति पूज रहे हैं, उनका संयोग कुल मालिक राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से, साथ संत सतगुरु या साध गुरु या उनके सतसंगी के लगाकर, और सच्चे मार्ग और सच्चे अभ्यास का उपदेश करा कर, एक दिन अपने निज धाम में बासा देंगे ॥

१५—इस वास्ते, हर एक जीव को जो अपना सच्चा उद्धार चाहे, मुनासिब और लाज़िम है कि सच्चे मालिक और उसके निज धाम का, और उससे मिलने के तरीक़े का, खोज और तलाश राधास्वामी संगत में करे, तो उसको पूरा पता और भेद और चलने का तरीक़ा मालूम हो जावेगा। और फिर संत सतगुरु की मेहर और दया लेकर और सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास करके, एक दिन निज धाम में पहुँच कर हमेशा को सुखी हो जावेगा, और काल और करम के कष्ट और क्लेश और जनम-मरन के चक्कर से क़तई छुटकारा हो जावेगा ॥

बचन १२

मालिक को भक्ति प्यारी है और भक्ति सतगुरू की, और किसी की भक्ति मंजूर नहीं है और जीव भी भक्ति के अधिकारी हैं ॥

१—कुल मालिक राधास्वामी दयाल प्रेम का भंडार हैं और जितने जीव हैं, वे सब उनकी अंस यानी किरन हैं, और वे भी प्रेम-स्वरूप हैं ॥

२—प्रेम का ज़हूरा दीनता और सेवा है, यानी जहाँ जिसको प्रेम है, वहाँ वह ख़ुशी के साथ सेवा और ख़िदमत करता है और दीनता यानी मुहब्बत और नियाज़मन्दी के साथ बर्तता है ॥

३—जो कि कुल मालिक प्रेम का भंडार है और कुल जीव प्रेम स्वरूप हैं, इस वास्ते प्रेम यानी मुहब्बत सब को प्यारी है, यहाँ तक कि जानवर भी चाहे ख़ूंख़्वार और ज़हरदार होवे, मुहब्बत के ग़ुलाम हो जाते हैं यानी जो कोई उनसे प्रीति और उनकी सेवा करे, उसको वे भी प्यार करते हैं और जैसे वह नाच नचावे, नाचते हैं ॥

४—इसी तरह कुल जीवों को प्रीति प्यारी है। जो कोई उनके साथ मुहब्बत करे और उनकी और उनके क़बायल की कुछ सेवा करे, तो वह उनको निहायत प्यारा लगता है और वे भी उलट कर उस से प्रीति करते हैं और अपना यार और भेदी बना लेते हैं ॥

५—कुल काम दुनिया के, मुहब्बत यानी शौक़ से किये जाते हैं। जिसको जिस काम या चीज़ से मुहब्बत है, वह उसके वास्ते मेहनत और और जतन करता है और जिस से प्यार और शौक़ नहीं हैं, उस तरफ़ क़दम भी नहीं उठाता और न हाथ चलाता है ॥

६—अब ख़्याल करो कि जब कि दुनिया में कोई किसी से बग़ैर मुहब्बत के नहीं मिलता और न कोई बग़ैर मुहब्बत किसी की सेवा और ख़िदमत करता है, तो कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल, और भी रास्ते के पद जैसे सोहं पुरुष, अक्षर पुरूष, ओङ्कार पुरुष और निरंजन जोति (जिनको शिव-शक्ति भी कहते हैं) बग़ैर मुहब्बत और दीनता और सेवा के, कैसे मिल सक्ते हैं ? यानी बग़ैर प्रेम के उनसे हरगिज़ मेला नहीं हो सकता। क्योंकि जब कि कुल जीवों

यानी अंसों को मुहब्बत प्यारी है, तो कुल मालिक और रास्ते के मुक़ामों के धनियों को भी मुहब्बत यानी प्रेम प्यारा है ॥

७—इस वास्ते जिस मत में कि मालिक की भक्ति नहीं है और न घट में मालिक का पता और भेद बताया है और न चल कर और चढ़ कर मिलने का तरीक़ा समझाया है, वह मत ख़ाली है। उसमें कभी किसी को कुछ प्राप्ति नहीं होगी ॥

८—संत सतगुरु कुल मालिक राधास्वामी दयाल के निज पुत्र और निज प्यारे या निज मुसाहिब हैं, और मालिक के हुकम से जब २ मुनासिब होता है, दुनिया में आकर सतसंग और उपदेश सुरत-शब्द मार्ग का जारी फ़रमाते हैं और ख़ुद आप भक्ति-भाव में बर्त कर, जीवों को भक्ति की रीत सिखाते हैं और जो २ उनका बचन मानते हैं उनको, निज घर में पहुँचाते हैं। उनका आना संसार में सिर्फ़ जीवों के उपकार और उद्धार के वास्ते होता है ॥

९—दुनिया में भक्ति, औतारों और देवताओं और पिछले महात्माओं और भक्तों की, जारी है और अक्सर लोग मूरत यानी स्वरूप की नकल बना कर या कोई निशान या ग्रन्थ और पोथी क़ायम करके पूजा करते हैं, लेकिन असल से बेख़बर, और न उसकी तलाश और न उससे मिलने की चाह रखते हैं। बल्कि जो कोई असल का भेद उनके सामने बयान करे, तो उससे लड़ने को तैयार होते हैं ॥

१०—जो कि ये लोग अनजान और हठीले और मूर्ख टेकी हैं इस वास्ते वे संतों के उपदेश के लायक़ नहीं हैं। लेकिन जिस-किसी के हिरदे में सच्चा शौक़ सच्चे मालिक से मिलने और उसके निज धाम में बासा पाने का पैदा हुआ है, उसको संतों का सतसंग प्यारा लगेगा

और वह शख़्स दीनता और सेवा और उपदेश लेकर अभ्यास करके, एक दिन संत सतगुरु की मेहर से, माया के घेर से पार होकर निज धाम में बासा पावेगा ॥

११—संतों के सतसंग में प्रेमी जन जमा होते रहते हैं और वे प्रेमा भक्ति की रीत में खुल कर बर्तते हैं और जगत् के जीवों की लज्जा और शरम और ख़ौफ़ नहीं करते। इस वास्ते जो कोई सच्चा परमार्थी संतों के सतसंग में जाता है, वह प्रेमी जन के संग रल-मिल कर, सहज में और सुखालेपन के साथ भक्ति में शामिल होकर अपना भाग बढ़ाता है और दिन २ मेहर और दया का अधिकारी होता जाता है ॥

१२—इस भक्ति से मतलब यह है कि प्रेमी के हिरदे में सच्चा प्रेम और खटक, कुल मालिक के दर्शनों की, पैदा होवे और वह दिन २ बढ़ती जावे। फिर यह खटक एक दिन धुर पद में पहुँचाकर छोड़ेगी ॥

१३—ऐसी भक्ति और प्रेम सच्चे मालिक के चरनों का, बिना संत सतगुरु के सतसंग और मेहर और दया के, किसी के हिरदे में पैदा नहीं हो सक्ता। इस वास्ते कुल परमार्थियों को जो सच्चे मालिक की भक्ति करना चाहें, चाहिये कि संतों की अथवा राधास्वामी संगत की तलाश करके उसमें शामिल होवें और संत सतगुरु का दर्शन और सेवा करके अपना भाग बढ़ावें ॥

१४—राधास्वामी मत में प्रेमा भक्ति का स्वरूप इस तौर से वर्णन किया है कि प्रेमी तो भक्ति करनेवाला है और उसकी बैठक जागृत के वक़्त नेत्रों में है। और भक्ति उस धार का नाम है कि जिसकी धुन पकड़ कर, सुरत और मन तिल के मुक़ाम से अपने घट में, ऊंचे देश की तरफ़ चलते और चढ़ते हैं और जब चढ़कर सुरत उस धाम में पहुँचे, जहाँ से कि वह

आदि धारा, शब्द और प्रेम और नूर की प्रघट हुई हैं, तब अपने भगवंत यानी प्रीतम से मेला हो गया। इस तरह भक्त और भक्ति और भगवंत जो ज़ाहिरा जुदे मालूम होते हैं, अभ्यास करके एक हो जाते हैं यानी धुर पद में पहुँच कर भक्ति ख़तम हो जाती हैं और भक्त अपने भगवंत से मिल जाता है और उसको इख़्तियार रहता है कि चाहे जब सनमुख रहकर अपने मालिक के दर्शन का आनंद-विलास लेवे ॥

१५—अब ग़ौर करके बिचारो और समझो कि इस क़िस्म की भक्ति का कहीं, किसी मत में ज़िक्र तक भी नहीं हैं और जो कोई जो कुछ कहता है, वह विद्या और बुद्धि और मामूली प्रीति के साथ बयान करता है। सो लोग वह प्रीति मूर्तों में या ग़ायब मालिक के चरनों में ख़र्च कर रहे हैं। ऐसी प्रीति बहुत कम बढ़ती है और बिना भेद और जुगत चलने के प्रीतिम से मिला नहीं सकती ॥

१६—मूर्ति-पूजा वालों के दिल में कभी अपने इष्ट से मिलने का ख़्याल नहीं गुज़रता क्योंकि वे मूर्ति को ही असल समझते हैं, और जो कोई असल का भेद सुनावे, तो उस से विरोध करते हैं। फिर यह भक्ति मौत के बक़्त और मरने के बाद क्या काम दे सक्ती है ?

१७—मूर्ति या ग्रंथ या निशान में चैतन्य गुप्त है और वह, कभी प्रघट होकर बोल नहीं सक्ता, लेकिन संत सतगुरु में महा निर्मल-चैतन्य, जैसे सतपुरुष राधास्वामी दयाल, और भी माया से मिला हुआ चैतन्य, जैसे ब्रह्म और पारब्रह्म और आत्मा-परमात्मा, प्रघट है इसलिए, उनका दर्शन सत्तपुरुष राधास्वामी के बराबर है। उनके सन्मुख जो कोई कुछ अर्ज़ करना चाहे, तो उसकी अरज़ी की ख़बर, जैसा मौक़ा होवे, ब्रह्म, पारब्रह्म पद और सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के चरनों में पहुँच सक्ती है ॥

१८—जो वँशावली गुरू या भेष या पंडित या विद्यावान हैं, वे कुल मालिक के भेद से बेख़बर हैं और उनके मत में चलना और चढ़ना बिल्कुल नहीं है, क्योंकि जब वे ब्रह्म को सर्वत्र व्यापक मानते हैं, तो फिर उससे मिलने के वास्ते आना-जाना या चलना-चढ़ना नहीं मानते ॥

१९—लेकिन असल में कुल मालिक एक-देशी भी है और सर्व-देशी भी। इस वास्ते जब तक कोई जतन चलने और चढ़ने का नहीं करेगा, तब तक सर्व-देशी मक़ाम से हट कर, एक-देशी मक़ाम में, जहाँ कुल मालिक राधास्वामी दयाल, महा निर्मल चैतन्य-स्वरूप बिराजते हैं, नहीं पहुँचेगा, और इस वास्ते उसका माया के घेर से छुटकारा भी नहीं हो पायगा, और न जनम-मरन का चक्कर बंद होवेगा ॥

२०—इस वास्ते कुल मालिक राधास्वामी दयाल को भक्ति और प्रेम प्यारा है और भक्ति और प्रेम जो संत सतगुरु के चरनों में किया जावे, वह मंज़ूर है, और किसी की भक्ति मंज़ूर नहीं है, क्योंकि उसका सिलसिला कुल मालिक के चरनों में लगा हुआ नहीं है और इस सबब से वहाँ से उसका फल नहीं मिल सक्ता है, और न भक्ति करने वाले को कभी असली स्वरूप का दर्शन नक़ली स्वरूप में या अपने घट में मिल सक्ता है। अलबत्ता शुभ-कर्म का फल, यानी कुछ सुख मिल जावेगा ॥

२१—संतों और भी और महात्माओं का क़ौल है कि सच्चे मालिक के दरबार में सिर्फ़ प्रेमी-जन यानी आशिक़ दख़ल पावेंगे और वे ही सन्मुख रहकर दर्शनों का आनन्द लेवेंगे। और जितने जीव तरह २ से परमार्थ कमाते हैं, उनको विशेष करके शुभ-कर्म का फल यानी कोई दिन के वास्ते सुख मिल जावेगा, क्योंकि इनके मन में चाह दर्शनों की नहीं होती और न ये संत सतगुरु से मिलना चाहते हैं, इस वास्ते महल में दख़ल नहीं पा सक्ते ॥

२२—जो सच्चे और पूरे आशिक़ और प्रेमी जन हैं, वे कोई ख़ास दर्जा तै करके, आप सच्चे मालिक के माशूक़ हो जाते हैं यानी सच्चे मालिक को ऐसे प्यारे लगने लगते हैं कि वह अपने से उनको किसी वक़्त जुदा करना नहीं चाहता और जो वे कहें या चाहें, वही मालिक को भी मंज़ूर होता है यानी उनकी और मालिक की मौज एक हो जाती है। यह लोग सच्चे मालिक के महा प्यारे यानी महबूब-ए-इलाही कहलाते हैं और संत और परम संत गति भी उन्हीं को मिलती है। यह सबसे बड़ा दर्जा भक्ति का है और किसी महा बड़भागी को, जिसके मन में सिवाय मालिक के दर्शनों के, और कोई चाह किसी क़िस्म की नहीं रही है, मिलता है।

बचन १३

सतसंगियों को सेवा के मुआमले में आपस में क्रोध नहीं करना चाहिए, क्योंकि क्रोध काल का चक्कर है। इस वास्ते क्षमा के साथ उसका हटाना मुनासिब है। और सतसंग में बचन चित दे करके सुनना और समझना और उनके मुआफ़िक़ कार्रवाई करना मुनासिब है, ताकि मन की हालत बदलती जावे और मैलाई कटकर सफ़ाई हासिल होती जावे ॥

१—सतसंत में काल अपना दख़ल नहीं कर सक्ता, लेकिन सेवा में सेवकों के मन को फेरफार कर क्रोध और विरोध और ईर्षा पैदा करता है ॥

२—जैसे एक शख़्स ने कोई ख़ास सेवा शुरू की, जो कोई दूसरे

ने, बग़ैर उसकी इज़ाज़त के वह सेवा कर दी, तो जिस शख़्स की वह सेवा है, उसके दिल पर यह बात निहायत सख़्त गुजरती है और वह अपने तईं समझता है कि मैं आज ख़ाली रह गया, क्योंकि उस सेवा में उसकी गहरी आसक्ति थी, इस सबब से वह नये सेवा करने वाले से नाराज़ होता है कि बग़ैर इज़ाज़त के उस ने वह सेवा कैसे करली ॥

३—मालूम होवे कि सतसंग में चन्द क़िसम की सेवायें होती हैं और सतसंगी और सतसंगिनें उनको उमंग के साथ करते हैं। जिसने जो सेवा इख़्तियार की, उसको उसी का आधार हो जाता है और वह वक़्त मुअइयना[1] पर हाज़िर होकर अपनी सेवा को उमंग के साथ अंज़ाम देता है ॥

४—जो कोई शख़्स पुराने या नये सतसंगियों में से किसी की सेवा में ख़लल डालता है, वह बेजा दस्तअंदाजी समझी जाती है। और जिसकी सेवा में ख़लल पड़ता है, वह सच्चे मन से ख़लल डालने वाले पर नाराज़ होता है और आइन्दा को उसको होशियार करता है कि फिर किसी के साथ ऐसी बेजा हरकत न करे ॥

५—सतसंग में सेवा ऐसे ही तक़सीम हो जाती हैं, जैसे कि कचहरी-दरबार में जुदा २ काम अहलकारों के मुतअल्लिक़ होता है ॥

६—संत सतगुरू आप सेवा तक़सीम नहीं करते। जो सतसंगी जिस काम को उमंग के साथ अंजाम देना शुरू कर देता है, वह उसी की सेवा समझी जाती है और वह उसको रोज़मर्रा बिला-नाग़ा वक़्त मुक़र्ररा पर अंजाम देता है, बल्कि बीमारी की हालत में भी, जहाँ तक मुमकिन होवे, अपनी सेवा अपने ही हाथ से करता है ॥

१—मुक़र्रर।

७—इस सूरत में, सेवा वाले का अपनी सेवा छिन जाने पर, चाहे एक ही बार के वास्ते होवे, नाराज़ होना और दिल में रंज मानना सही मालूम होता है। पर संत सतगुरू फ़रमाते हैं कि सतसंगी को हर वक़्त क्षमा रखना चाहिए और जब क्रोध या विरोध मन में आवे, तो उसको काल का चक्कर समझ कर, जहाँ तक मुमकिन होवे, हटाना चाहिये यानी जिस सतसंगी ने जान बूझकर, या अनजानता के साथ उसकी सेवा एकबार लेली है, तो उसको धीरज के साथ फ़हमायश करना मुनासिब है कि जिसमें फिर बिला इज़ाजत वह ऐसी हरकत न करे। लेकिन जब कोई दीनता के साथ, कोई सेवा, एक वक़्त के वास्ते मांगे, तो भी सतसंगी को दया करके और मांगनेवाले का भाग बढ़ाने के वास्ते ख़ुशी के साथ अपनी सेवा उसके हाथ से करा देना चाहिये। इसमें परस्पर प्रीति बढ़ेगी और क्रोध और विरोध पैदा नहीं होगा॥

८—क्रोध और बिरोध बेशक काल का चक्कर है। इस से सतसंग में झगड़ा और आपस में विपरीत फैलती है। जो यह क़ैफ़ियत ज़्यादा बढ़े तो फ़िसाद की शकल पैदा करती है और यह सतसंग के वास्ते निहायत शर्म की बात है॥

९—इस वास्ते संत सतगुरु बारम्बार फ़रमाते हैं कि क्रोध, विरोध और ईर्षा से बच कर, अपनी परमार्थी कार्रवाई करना चाहिये और जब कभी, कोई, किसी मुआमले में हठ ज़बर करे या दीनता के साथ मांगे, तो उसकी हठ पूरी करनी चाहिये और पीछे उसको समझा देना मुनासिब है कि जिस में आइन्दा इस क़िस्म की हठ बे-मौक़े न करे। और जो सेवा का शौक़ीन है, तो कोई सेवा जो ख़ास तौर पर कोई न करता होवे, या अब तक वह ख़ास सेवा जारी न हुई होवे, उसको अपने

तौर से उमंग और प्रेम के साथ करे, ताकि दूसरे की सेवा छीनी न जावे और क्रोध या विरोध पैदा न होवे ॥

१०—सतसंग में सतसंगियों को इस बात का बड़ा लिहाज़ और ख़्याल रखना चाहिये कि आपस में क्रोध और विरोध या ईर्षा पैदा न होवे, नहीं तो सतगुरु को भी तकलीफ़ होगी और क्रोधी, विरोधी आप भी तकलीफ़ पावेगा और दूसरे को भी तकलीफ़ देगा। यह हालत और चाल दुनियादारों की है कि ज़रा सी बात पर बिगड़ कर, लड़ाई और फ़िसाद को तैयार हो जाते हैं। जो सतसंगी का भी ऐसा ही हाल रहा, तो जानना चाहिये कि अभी तक सतसंग के बचनों का असर उसके दिल पर कुछ नहीं हुआ है और वह शख़्स क़ाबिल सतसंग के नहीं है। लेकिन संत सतगुरु दया करके ऐसे जीवों को बिल्कुल हटाते नहीं हैं, इस उम्मीद पर कि दो-चार मर्तबे झिड़की और ताड़-मार सह कर, उसका मन बदल कर दुरुस्त हो जावेगा ॥

११—कोई जीव कैसा ही मैला और नाक़िस तबीअत होवे, उसकी सफ़ाई और गढ़त सिर्फ़ सतसंग में मुमकिन है। और किसी जगह कोई गढ़ा नहीं जावेगा, बल्कि ज़्यादा मैला होगा। इस वास्ते किसी जीव को जहाँ तक मुमकिन होवे, सतसंग से हटाना नहीं चाहिये, बल्कि जिस किसी की दुरूस्ती मंज़ूर होवे, और वह चाहे कैसा ही बद-चलन होवे, वह सच्चे सतसंग में शामिल होने से एक दिन गढ़ जायेगा और उसकी समझ और रहनी बदल जावेगी ॥

१२—सतसंग किसको कहते हैं, यह भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, ताकि धोखा न रहे। सतसंग, संत सतगुरू के संग का नाम है और उसमें सिर्फ़ सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल और उनके धाम और

नाम की महिमा गाई जाती है और प्रेम के बढ़ाने की जुगत और रास्ता तै करने का तरीक़ा और नाम और भेद मंज़िलों और रास्ते का वर्णन किया जाता है और दुनिया और उसके सामान वग़ैरा की नाशमानता और उसके धोखे का स्थान होना, खोल कर समझाया जाता है ॥

१३—जो कोई ऐसा सतसंग होशियारी के साथ करेगा और फिर बचनों को विचारेगा तो ज़रूर उसके मन की हालत थोड़ी-बहुत बदलेगी, और सच्चे मालिक का थोड़ा-बहुत प्रेम हिरदे में आवेगा और संत सतगुरु के चरनों में प्रीति और प्रतीत उसकी बढ़ती जावेगी ॥

१४—ख़ुलासा यह कि सतसंगी की रहनी और स्वभाव सतसंग और अभ्यास करके बदलेंगे, और जब दूसरे सतसंगियों की चाल-ढाल और रहनी-गहनी देखेगा, तब सच्चा पछतावा मन में ला कर नाक़िस स्वभाव और आदत को, आपही, आहिस्ते २ छोड़ता जावेगा और संत सतगुरु और शब्द और सतसंग और प्रेमी-जन प्यारे लगने लगेंगे और उनमें दिन २ प्यार और भाव बढ़ता जावेगा ॥

१५—दुनिया में बड़ी कसर सच्चे सतसंग की हो रही है और इसी सबब से जीवों की हालत नही बदलती । जो सतसंग कि और मतों में जारी है, उसमें, विशेष करके, तवारीख़ी हालात और क़िस्से और क़ज़िये और लड़ाई-झगड़े वग़ैरा और कभी २ कुछ मन की ताड़-मार वग़ैरा का बयान होता है । मगर इन बातों से मालिक के चरनों में प्रीति और प्रतीत नहीं बढ़ती ॥

१६—सच्चा और पूरा सतसंग उसी का नाम है, जहाँ संत सतगुरू या साध गुरू बिराजते हैं और जो अपने मन और इन्द्रियों को क़ाबू में लाकर सर्व-अंग करके अपने मालिक के चरनों के प्रेम में मस्त और

मगन रहते हैं, और जो कोई सच्चा परमार्थी उनके चरनों में आवे, उसको भी दया करके प्रेमी बना देते हैं। फिर जो कोई उनके सतसंग में जावेगा, अगर वह सच्चा परमार्थी है, तो ज़रूर संत सतगुरु और प्रेमी-जन का दर्शन करके और उनकी रहनी और हालत देख कर, आप भी प्रेमी होता जावेगा और जिस क़दर चरनों का प्रेम हिरदे में बस्ता जावेगा उसी क़दर, खोटे स्वभाव और बिकारी अंग दूर होते जावेंगे और एक दिन पूरी सफ़ाई होकर सत्तलोक में बासा पावेगा ॥

बचन १४

परमार्थ की चाह मुवाफ़िक़ दुनिया की चाह के ज़बर होनी चाहिए, तब कुछ फ़ायदा हासिल होगा। और जो दुनिया और उसके भोग विशेष प्यारे लगे, तो फिर जीव का गुज़ारा कैसे होवे ? अव्वल तो जीव संतों के सतसंग का अधिकार नहीं रखता। कुछ अर्से तक हाज़िर होवे तब बचन समझे और फिर कुछ अर्सा चाहिए कि उसका वर्तावा बचन के मुवाफ़िक़ दुरुस्त होवे ॥

१—इस दुनिया में स्वार्थ यानी दुनिया की कार्रवाई मुक़द्दम और ज़्यादातर अज़ीज़ समझी जाती है, और परमार्थ जिसकी असल में ख़ास ज़रूरत है, बहुत ज़रूरी नहीं समझा जाता, यानी उसकी कार्रवाई का फ़िक्र जीवों को बहुत कम है ॥

२—बहुत से जीव इस ज़माने में परमार्थ की कुछ ज़रूरत नहीं समझते और इस वास्ते कोई कार्रवाई, किसी क़िस्म की, परमार्थी जैल में, इरादतन् नहीं करते ॥

३—बाज़े कर्म और तीर्थ, व्रत, मूर्ति-पूजा वग़ैरा या पोथी का पाठ और माला फेरना, जैसा कि आम लोगों को करते देखते हैं, बिला तहक़ीक़ करने उसके मतलब और फ़ायदे और तरीक़-ए-कार्रवाई के, जैसा कुछ कि उनसे बन आवे, करने लगते हैं और अपने मनमें अहंकार इस बात का रखते हैं कि हम ऐसे और वैसे पूजाधारी हैं ॥

४—बाज़ों ने जो थोड़ी विद्या पढ़ी और वेदान्त के ख़ुलासा ग्रंथ देख कर अपने तईं ब्रह्म मान लिया और भक्ति और पूजा असल ब्रह्म पद और औतारों की उड़ा दी और कोई अभ्यास किसी क़िस्म का, बास्ते सफ़ाई अन्दरूनी और चढ़ाई मन और सुरत के किया नहीं, सो इन जीवों का घाट नहीं बदला। यानी ये लोग मन और इन्द्रियों ही के मक़ाम पर, जैसे कि संसार में बर्त रहे थे, रहे, और थोड़ा-बहुत वैसा ही बर्तावा जारी रहा ॥

५—थोड़े जीव जो सच्चे दर्दी और खोजी सच्चे परमार्थ के थे, वे तलाश और तहक़ीकात करते हुए, कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया से, संतों के सतसंग यानी राधास्वामी संगत में पहुँचे, और वहाँ पता और भेद सच्चे मालिक और उसके धाम का और हाल रास्ते और मंज़िलों का और तरीका चलने और चढ़ने का घट में मालूम करके बहुत खुश हुए और उपदेश लेकर अभ्यास में लग गये ॥

६—इन जीवों को संत सतगुरु के बचन सुनकर मालूम हुआ कि जब तक परमार्थ यानी सच्चे मालिक से मिलने की चाह, कुल संसारी कामों से किसी क़दर ज़बर न होगी, तब तक परमार्थी फ़ायदा और आनन्द, जैसा चाहिए वैसा, घट में, नहीं मिलेगा और न जल्दी तरक़्क़ी होगी ॥

७—इसमें कुछ शक नहीं कि जो कोई जिस क़दर लगन लेकर परमार्थ में लगेगा, उसको उसी क़दर फ़ायदा हासिल होवेगा, और उसी मुबाफ़िक़ उसकी तरक़्क़ी भी होती जावेगी। लेकिन जो कोई अपना काम जल्द और पूरा बनाना चाहता है, उसको अलबत्ता सब से बढ़ के अनुराग और बैराग और सतसंग और सेवा और मेहनत अभ्यास बग़ैरा की करनी पड़ेगी ॥

८—राधास्वामी मत में घरबार या रोज़गार नहीं छुड़ाया जाता है, लेकिन वास्ते प्राप्ति गुरुमुखता के सब को बराबर हिदायत की जाती है। और गुरुमुखता से मतलब यही है कि धुर धाम में पहुँच कर, मालिक से मिलने की चाह, और सब चाहों से ज़बर होवे और यह बात, अगर शौक़ तेज़ है, तो गृहस्थ में बैठे, संत सतगुरु और कुल मालिक की दया से हासिल हो सक्ती है ॥

९—मालूम होवे कि सिवाय अधिकारी के, यानी सच्चे खोजी और दर्दी परमार्थी के, और कोई जीव संतों के सतसंग के लायक़ नहीं है, क्योंकि जब तक दुनिया और उसके भोग-विलास विशेष प्यारे लगते हैं, तब तक संतों के बचन, संसार की तरफ़ से वैराग और चरनों में अनुराग अच्छे नहीं मालूम पड़ेंगे, और न मन उनके बार २ सुनने का यानी सतसंग में हाज़िर होने का इरादा करेगा और न ऐसे जीवों से अभ्यास सुरत-शब्द मार्ग का बन पड़ेगा ॥

१०—जो कोई जीव मौज से सतसंग में आ जावे, और ठहरा रहे, तो अलबत्ता बार २ सतसंग के बचन सुन कर, उसके मन की हालत किसी क़दर बदलनी मुमकिन है, यानी उस में मालिक के चरनों का अनुराग और दुनिया की तरफ़ से वैराग थोड़ा २ पैदा होता

जावेगा और प्रेमी जन के विरह और प्रेम की हालत देख कर मदद मिलती जावेगी, यानी कोई दिन में वह जीव भी सच्चे प्रेमियों की जैल में दाख़िल हो जावेगा और एक-दो जनम की देर-अबेर से अपना काम पूरा बनवा लेगा ॥

११—संतों के सतसंग की महिमा बहुत भारी है। जिन बातों का वहाँ निर्णय होता है और जो भेद कि वहाँ परघट किया जाता है, उसका जिक्र या बयान किसी मत में, जो दुनिया में आज-कल जारी हैं, पाया नहीं जाता, और इसी सबब से वहाँ, जीव का पूरा और सच्चा उद्धार भी मुमकिन नहीं है ॥

१२—लेकिन जगत के जीवों ने और उनके साथ पंडित और भेष ने, जो परमार्थ में गुरु और पेशवा बन रहे हैं, संतों के सतसंग की क़दर न जानी, और बजाय उमंग और दीनता के साथ शामिल होने के, अपनी नादानी से उलटी उसकी निन्दा करते हैं और जीवों को वहाँ जाने से, अनेक तरह के डर दिखा कर रोकते हैं ॥

१३—सबब इसका यह है कि इन सब के मनों में संसार और धन और मान-बड़ाई की क़दर सब से ज़बर धरी हुई है, और परमार्थ को एक वसीला अपने रोज़गार और मान-बड़ाई का समझ कर, ऊपरी तौर पर उसकी कार्रवाई ऐसी तरकीब से कि जिस में दुनियादार राज़ी रहें, करते हैं, और मालिक की रजामन्दी या नाराज़गी का ज़रा भी ख़ौफ़ या ख़्याल उनके दिल में नहीं आता। बल्कि मालिक की मौजूदगी के बारे में भी उन के मन में शक और शुबहा बना रहता है ॥

१४—फिर ख़्याल करो कि ऐसे जीवों से या उनके गोल और फ़िरक़ों से, क्या कार्रवाई सच्चे परमार्थ की बननी मुमकिन है? और

संतों के सतसंग की उन में लियाक़त कहाँ है ? वे तो संतों के सतसंग का हाल सुनने का भी अधिकार नहीं रखते ॥

१५—अब सब को मालूम होवे कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और शक्ति और ईश्वर और परमेश्वर की यह ताक़त नहीं है कि जीव को चौरासी से बचा लेवें। यह शक्ति सिर्फ़ संतों को हासिल है। इस वास्ते सब जीवों को मुनासिब और लाज़िम है कि तलाश और खोज करके संत सतगुरु के सतसंग में (जो कुल मालिक राधास्वामी दयाल के निज पुत्र और प्यारे मुसाहिब हैं) हाज़िर होकर और कोई दिन उनका सतसंग और सेवा करके, अपना भाग बढ़ावें और उपदेश लेकर सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास शुरू करें, ताकि एक दिन कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की दया से निज धाम में बासा पावें और जनम-मरन के चक्कर से क़तई बचाव हो जावे ॥

बचन १५

सच्चा परमार्थी गुरू के बचन के मुआफ़िक़ बर्ताव करेगा और मन पर रोक और टोक लगावेगा। लेकिन और लोग मन के कहने में चलेंगे और धोखा खावेंगे ॥

गुरूमुख अंग का वर्णन

१—जिसको सच्ची खोज और सच्चा दर्द परमार्थ का है, वह संत सतगुरु और उनकी संगत का पता लगाकर उसमें शामिल होगा, क्योंकि बग़ैर संत अथवा राधास्वामी मत के, उसको कहीं और किसी तरह से शांति नहीं आवेगी ॥

२—जब कोई दिन होशियारी के साथ सतसंग करेगा और बचन सुनकर बिचारेगा और उनके मुआफ़िक़ अपनी रहनी और बर्ताव दुरुस्त करना चाहेगा, तब उसको महिमा सतगुरु और सतसंग की, कुछ मालूम पड़ेगी और इतने ही में बहुत हालत और समझ-बूझ अपनी बदलती हुई नज़र आवेगी ॥

३—जिस वक़्त सतगुरु मेहर और दया से उपदेश, सुरत शब्द मार्ग का फ़रमावेंगे, तब शौक़ के साथ अंतर अभ्यास में लग कर कुछ रस और आनन्द मिलेगा और कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की दया, अंतर और बाहर, परखने में आवेगी। तब प्रतीत और प्रीति चरनों में बढ़ेगी, और उमंग के साथ संत सतगुरु और प्रेमी जन की सेवा करना शुरू करेगा ॥

४—फिर सब तरह से अंतर और बाहर परचे पाकर सतगुरु की गहरी प्रीति और प्रतीत मन में आवेगी और हर बात में उनकी मौज को मुक़द्दम रक्खेगा और जहाँ तक मुमकिन होगा, अपनी कार्रवाई परमार्थी और संसारी, सतगुरु के बचन और आज्ञा के मुवाफ़िक दुरस्त करेगा, ताकि तरक़्क़ी में किसी तरह का हर्ज न पड़े ॥

५—सिवाय इसके सच्चा परमार्थी अपने मन और इन्द्रियों की चाल को निरखता और परखता चलेगा और जहाँ तक मुमकिन होगा सतसंग और दया का बल लेकर, उनको नीचा रक्खेगा और ज़ोर फ़ड़कने नहीं देगा ॥

६—गृहस्थ में रह कर यह ज़रूर नहीं है कि मन और इन्द्रियों के साथ क़तई लड़ाई पैदा करे और उनको किसी क़िस्म का भोग बिल्कुल न दे। इस में काम दुरस्ती से जल्द नहीं बनेगा और ऐसा शख़्स हमेशा मन के हाथ से झटके और धोखे सहता रहेगा ॥

७—विचारवान और समझदार परमार्थी को इस क़दर अहतियात मुनासिब है कि किसी भोग की आप इच्छा न उठावे और जो भोग कि अनिच्छित या परिच्छित प्राप्त होवें, उनमें अहतियात के साथ बर्ताव करे ॥

८—अनिच्छित भोग वे हैं कि जो बग़ैर इसकी चाह उठाने से प्राप्त होवें और परिच्छित भोग वे है कि जो दूसरा शख़्स अपनी ख़ुशी से लेकर या ख़रीद करके पेश करे और इस बात की दरख़्वास्त करे कि उसकी खातिर थोड़ा-बहुत वह भोग काम में लाया जावे ॥

९—मन जन्मानजन्म का भूला हुआ और संसार में भरमा हुआ है और अनेक तरह के भोगों में ग्रसा हुआ है। यकायक यह भोगों को नहीं छोड़ सक्ता और न उनकी चाह उठाने से बाज़ रह सक्ता है। लेकिन सच्चा परमार्थी सतसंग और भक्ति और संत सतगुरु की मेहर और दया का बल लेकर इस मन को किसी क़दर ढ़ीला डाल सक्ता है और दुनिया का हाल इसको अच्छी तरह से दिखला कर और उसका नतीजा समझा कर, उसकी तरफ़ से किसी क़दर बैराग और उदासीनता चित्त में पैदा कर सक्ता है, और उधर चरनों में संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल के विशेष अनुराग जगा सक्ता है। और इस तरह रफ़्ते २ एक दिन मन को क़ाबू में ला सक्ता है, क्योंकि जब मन में थोड़ा-बहुत प्रेम आया और ऊंचे देश के अभ्यास में रस मिला, तो वह आपही संसार की तरफ़ से हट कर, सच्चे परमार्थ में ज़ौक़ और शौक़ के साथ लगेगा और दिन २ तरक़्क़ी हासिल करेगा और संसार और उसके सामान, और भी कुटुम्ब परिवार और धन-माल वग़ैरा की क़दर और महिमा उसके चित्त में घटती जावेगी ॥

१०—मालूम होवे कि संसारी भोग और बिलास और माया के

रचे हुये पदार्थ ऊंचे और नीचे देश के, सुरत और मन के साथ वक़्त चढ़ाई के, ऊंचे देश में चल नहीं सक्ते और न उस देश में उन पदार्थों की कुछ ज़रूरत सुरत को पड़ती है। इन पदार्थों में सिवाय ज़रूरत के मुवाफ़िक़ बंधनों का होना नामुनासिब और सुरत और मन की चढ़ाई में विघ्नकारक है ॥

११—जहाँ कुल मालिक का धाम है, वहाँ कोई पदार्थ या वस्तु जो कि रचे गये हैं, पहुँच नहीं सक्ते और न वहाँ ठहर सक्ते हैं। इस वास्ते सच्चे परमार्थी को, जिस क़दर कि वह अपनी प्रीति राधास्वामी दयाल के चरनों में बढ़ाता जावे, रचना और उसके सामान से, चाहे किसी मंड़ल और देश में होवे, अंतर में हटना और न्यारे होना ज़रूर और मुनासिब है, नहीं तो उसकी चाल नादानों के मुवाफ़िक़ बहुत सुस्त चलेगी और रास्ते में झकोले खाता जावेगा ॥

मनमुखी अंग का वर्णन

१२—जो लोग कि इत्तिफ़ाक़ से संतों के सतसंग में शामिल हो गये हैं, लेकिन अभी उनको दुनिया के भोग-बिलास प्यारे लगते हैं और उन्हीं की तरक़्क़ी की चाह उठाते रहते हैं और उस चाह के पूरा करने के निमित्त अनेक तरह के जतन करते रहते हैं, उनकी नज़र और तवज्जह हमेशा मन और माया की तरफ़ ज़बर रहेगी और परमार्थ की तरफ़ निबल। इस वास्ते उनकी कार्रवाई को मनमुखता के नाम से वर्णन किया जाता है ॥

१३—ये लोग दुनिया के बहुत ज़बर भोग मिलने के वक़्त, परमार्थ को आसानी से ढ़ीला डाल देंगें या छोड़ देंगे ॥

१४—परमार्थ के रस और आनन्द की प्राप्ति के लिये, उनसे

मेहनत बहुत कम बल्कि नहीं हो सकेगी। बचन सतगुरु और सतसंग के, वास्ते दुरुस्ती और गढ़त मन और इन्द्रियो के और प्राप्ति तरक़्क़ी परमार्थ के, उन लोगों से बहुत कम यानी ज्यों के त्यों नहीं माने ज़ावेंगे और जो ज्यादा ज़ोर दिया जावेगा, तो सतसंग छोड़ कर चले जावेंगे और अजब नहीं कि सतसंग की निन्दा करें ॥

१५—जो भक्ति के अंग और प्रेम की रीति संसारियों को अच्छी नहीं लगती है, उसमें यह लोग कम बरतेंगे और संसारियों में उस चाल को निन्दा के तौर पर कहेंगे ॥

१६—खुलासा यह है कि इन लोगों के मन में संसार और उसके सामान और उसके रस्म और क़ायदे की महिमा ज़बर रहेगी और उसको छोड़ने में जान सी निकलती मालूम होवेगी। लेकिन जो कुछ अर्से तक ये लोग सतसंग में पड़े रहे, तो आहिस्ते २ संत सतगुरु अपनी मेहर और दया से इनके मन की भी गढ़त कर लेंगे और चरनों का थोड़ा-बहुत प्रेम बख़्श कर प्रेमियों के सतसंग में लगा देंगे ॥

१७—जो संसारी या मनमुख जीव संतों के सतसंग में नहीं आवेंगे और न कभी संतों के प्रेमी सतसंगियों से उनका मेल होगा, तो वे चौरासी के चक्कर में भरमते रहेंगे और बारम्बार देह धर कर दुख-सुख का भोग करते रहेंगे और जनम-मरन के चक्कर का कष्ट और क्लेश सहते रहेंगे ॥

१८—दुनिया में जो कुछ बाहरमुख कार्रवाई अनेक मतों की जारी है, वह शुभ कर्म में दाखिल है और मन और इन्द्रियों की गढ़त उसमें नहीं है, बल्कि इनको और ताक़त मिलती है और बाहरमुख बिलास का शौक़ बढ़ता जाता है। फिर संसारी जीव ऐसी हालत में, कैसे

लायक कमाने सच्चे परमार्थ के, जो कि सिर्फ़ संतों के सतसंग में जारी है, हो सक्ते हैं ?

१९—बाज़े जीव जो अंतरमुख कार्रवाई करते हैं, उनका अभ्यास नाभि या हिरदे में होता है या त्रिकुटी में, मगर मंज़िल और रास्ते के हाल से ये जीव बिल्कुल बेख़बर हैं और जो अभ्यास करते हैं, उसमें भी चढ़ाई का फ़ायदा बिल्कुल नहीं है। और बहुतेरे तो आंख बन्द करके या खुली रख कर, ध्यान बिल्कुल बे-ठिकाने करते हैं। सो उसमें सिमटाव का भी फ़ायदा बहुत कम है और अहंकार इन लोगों को करनी का बहुत ज्यादा होता है और ये समझते हैं कि जो कुछ जानना था, वह हमने जान लिया और जो कुछ करना था, वह सब कर चुके ॥

२०—जो कोई इन लोगों को संत मत या ऊंचे मक़ाम का ज़िक्र सुनावे, तो बिल्कुल तवज्जह नहीं करते और संतों के बचन में भाव और प्रतीत नहीं लाते ॥

२१—यही हाल इनके गुरुओं का है, जो कि निपट संसारी हैं और संसार ही की तरक़्क़ी चाहते हैं। ये लोग बजाय प्रीति के संतों से दुश्मनी करते हैं और झूठी बुराइयां करके किसी जीव को संतों के सतसंगी में जाने नहीं देते, क्योंकि वे समझते हैं कि जो जीव संतों के सतसंग में कसरत से जावेंगे, तो उनकी मान-बड़ाई और आमदनी में ख़लल पड़ेगा और उनका पाखंड और कपट खुल जावेगा ॥

२२—ये लोग निपट दुनियादारों के वास्ते बनाये गये हैं और इस वास्ते इनका संसार में रखना ज़रूर और मुनासिब है, ताकि दुनियादारों से कुछ तन-मन-धन की सेवा करावें और मनमुखों को संतों के सतसंग में न जाने देवें जिससे कि वहाँ का निर्मल परमार्थ गदला न होने पावे ॥

बचन १६

जो कोई सचौटी के साथ सतसंग करेगा, उसकी हालत ज़रूर बदलेगी और उसकी सब वासनायें रफ़्ते २ पूरी या दूर हो जावेंगी । और जो कि बचन चित्त देकर नहीं सुनते या उनके मानने का इरादा नहीं करते, वे कोरे रहेंगे, चाहे उमर भर सतसंगे करें, क्योंकि सुनना और समझना आसान है, मगर उसके मुवाफ़िक़ बर्ताव किये वग़ैर कुछ फ़ायदा हासिल नहीं हो सक्ता ॥

१—जिस किसी को सच्चा दर्द परमार्थ का है और सच्चा फ़िक्र अपने जीव के कल्यान का पैदा हुआ है, वह तलाश करके संतों के सतसंग में जावेगा और उनका दर्शन और बचन चित्त देकर करेगा और सुनेगा और जो बचन कि मानने चाहियें, उनको उमंग के साथ मानने का इरादा करेगा ॥

२—इस तरह रोज़ाना सतसंग करके, सच्चे परमार्थी की प्रीति फ़िज़ूल चीज़ों और आदमियों और भी जगत में घटती जावेगी और संत सतगुरु और प्रेमी जन और भी मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में बढ़ती जावेगी ॥

३—जब उपदेश सुरत-शब्द मार्ग का लेकर अंतर अभ्यास शुरू किया जावेगा, तब कुछ रस और आनन्द अंतरी मिलेगा और कुछ मालिक की दया और क़ुदरत नज़र पड़ेगी और प्राति-प्रतीत और ज़्यादा बढ़ेगी और उसी क़दर संसार और उसके भोग-बिलास की तरफ़ से चित्त उदासीन होता जायेगा ॥

४—यह निशान हालत बदलने का है और यही सतसंग के असर होने का सबूत है और सच्चे मत की भी यही पहिचान है कि संसार और उसके भोग-बिलास में, जो सब जीव फँसे हुये हैं, उनसे आहिस्ते आहिस्ते न्यारा होता जावे और संत सतगुरू और राधास्वामी दयाल के चरनों में, अंतर और बाहर, प्रीति और प्रतीत बढ़ती जावे ॥

५—सच्चा परमार्थी संसारी चाहों को, सिवाय उनके कि जो ज़रूरी हैं, आहिस्ते २ अपने अंतर में काटता जावेगा, और जो सतगुरु अपनी मौज से कोई चाह पूरी करें, तो उसमें मुनासिब तौर पर बर्ताव करेगा और अटकेगा नहीं, क्योंकि जिस क़दर जिसकी सुरत और मन ऊंचे देश में चढ़ेंगे उसी क़दर नीचे देश के भोग उसको रूखे-फीके मालूम पड़ेंगे ॥

६—जिसके मन में सच्ची लाग परमार्थ की नहीं है, पर कुछ महिमा सुन कर या किसी रिश्तेदार या दोस्त सतसंगी का संग करके, सतसंग में शामिल हो गये हैं, तो वह भक्ति के ज़ाहिरी अंगों में सबके साथ शामिल होकर दुरुस्त बर्तेंगे, लेकिन बचनों को जैसा चाहिये, होशियारी के साथ नहीं सुनेंगे और न उनके मानने का यानी उनके मुवाफ़िक़ अपना बर्ताव दुरुस्त करने का इरादा करेंगे ॥

७—सच्चा परमार्थी जिसने मत को अचछी तरह समझ लिया है, संसारियों से नहीं डरेगा और न उनकी शर्म करेगा। लेकिन इस क़िस्म के लोग कि जिनका ज़िक्र ऊपर हुआ है, निन्दकों और जगत के जीवों से बहुत डरेंगे और जो वह ज़्यादा ज़ोर डालेंगे तो शायद सतसंग भी छोड़ देंगे ॥

८—इन जीवों का अगर भाग से सतसंग में कोई दिन ठहरना हो जावे, तो रफ़्ते २ सच्चे परमार्थियों के वसीले से, सच्चा परमार्थ उनके अंतर में भी थोड़ा-बहुत धसाया जावेगा और फिर उनकी भी हालत

बचन सुन कर और अंतर अभ्यात करके कुछ २ बदलने लगेगी और फिर उनको, थोड़ी-बहुत महिमा सतसंग और संत सतगुरु की मालूम पड़ेगी और उसी क़दर भाव बढ़ता जावेगा ॥

९—सतसंग की महिमा बहुत भारी है। जो सच्चा होकर इसमें लगा, वह कंचन हो गया, जैसे लोहा पारस से मिलकर कंचन हो जाता है, यानी उसके सब संसारी स्वभाव बदल कर परमार्थी हो जाते हैं ॥

१०—जो बे-परवाही के साथ सतसंग करता रहेगा, तो व जैसा संसारी अंग और स्वभाव लेकर आया था, वैसा ही बना रहेगा, चाहे बरसों सतसंग में पड़ा रहे, क्योंकि उसके मन में इरादा बचन के मानने का नहीं है और न अपनी हालत बदलवाना चाहता है। ऐसे जीव सतसंग की नेकनामी के बजाय बदनामी कराते हैं ॥

११—मनुष्य के संग की तो ऐसी महिमा है कि बहुत से जानवरों को सिखा कर, उनसे तरह २ के काम कराता है और नचाता है, तो फिर संतों के सतमंग की क्या महिमा कही जावे कि कैसा ही जीव नापाक और मैला होवे, उसको मेहर दृष्टि से बचन सुना कर और अपने संग लगा कर साफ़ और पाक कर लेते हैं। और यह बात कुछ अचरजी नहीं है, क्योंकि जहाँ ख़ूंख़्वार और ज़हरीले और तरह २ के जानवर सिखाये जा सक्ते हैं, तो फिर मनुष्यों की गढ़त और सफ़ाई कुछ मुशकिल बात नहीं है ॥

१२—इस वास्ते हर एक जीव को जो अपना फ़ायदा संसारी और परमार्थी चाहे, लाज़िम और मुनासिब है कि जिस तरह बन सके, संतों के सतसंग में शामिल होवे और जब २ मौका मिले, सतसंग में हाज़िर होकर और तवज्जह के साथ बचन सुन कर अपनी गढ़त और दुरुस्ती करावे ॥

बचन १७

यह मन मस्त और ग़ाफिल है और दुनिया के भोग-विलास में बँधा हुआ है । बिना सतसंग और मेहर पूरे गुरू के, इसकी हालत बदल नहीं सक्ती । इस वास्ते अपने वक़्त के पूरे गुरू का सतसंग प्रीति के साथ करना चाहिये और जहाँ तक भुमकिन होवे, उनका बचन मानना चाहिये, तब कारज बनेगा ॥

१—यह मन मस्त और ग़ाफ़िल और जगत में भरमा हुआ है और माया के पदार्थों में इसकी रुचि बहुत ज़्यादा है । सो दसों इन्द्रियों के संग हमेशा भोगों में फँसा और अटका रहता है या उन्हीं का चिन्तवन करता है ॥

२—परमार्थ में ऐसा मन कुछ काम नहीं दे सक्ता है । लेकिन जो संत सतगुरु के सतसंग में मौज से इसका गुज़र हो जावे और वे इस पर मेहर की नज़र फ़रमावें, तो अलबत्ता बदल कर संसारी से परमार्थी बन सक्ता है ॥

३—कुल्ल जीवों का मन संसारी है, क्योंकि शुरू से ही उनको संग संसारी लोगों का होता रहा है और संसार ही की महिमा उनके चित्त में बसी रहती है ॥

४—जो जीव मेहर से संत सतगुरु के सतसंग में जावे और बचन चित्त दे कर सुते और समझे, तो उसके मन में खोज कुल मालिक राधास्वामी दयाल का पैदा होगा और दया से दिन २ हर एक बात का निर्णय सुन कर और समझ कर उसकी समझ-बूझ बढ़ती जावेगी और दुनिया और उसके सामान में पकड़ हलकी होती जावेगी और

और कुल मालिक राधास्वामी दयाल और प्रेमी जन के संग की क़दर और दुर्लभता चित्त में समाती जावेगी ॥

५—यह मन जन्मान जनम से अपने निज घर को भूला हुआ और संसार में फँसा हुआ चला आता है। सो इसकी प्रीति कुटुम्ब-परिवार, धन-माल और भोग-बिलास में निहायत गहरी और मज़बूत हो रही है। यह प्रीति यकायक तोड़ी या छोड़ी नही जा सक्ती। लेकिन सतसंग में बैठ कर आहिस्ते २ इस प्रीति की जड़ कटनी मुमकिन है ॥

६—जब जीव को संतों के बचन सुन कर या पढ़ कर शौक़ उनके ज़्यादा सुनने और समझने और उनके मुवाफ़िक़ कार्रवाई करने का पैदा हुआ, तब से राधास्वामी दयाल आप उसको सतसंग में शामिल करके बचन सुनवावेंगे और उसकी समझ-बूझ मुवाफ़िक़ उन बचनों के, बदलेंगे और उसके हिरदे में दिन २ थोड़ा-बहुत रस और आनन्द बचन और अभ्यास का, बख़्श कर तरक़्क़ी देते जावेंगे और अंतर और बाहर दया और रक्षा के परचे देकर, उसकी प्रीति और प्रतीत चरनों में बढ़ाते जावेंगे ॥

७—यह हाल उत्तम अधिकारी जीव का है, और मध्यम और निकृष्ट अधिकारी खोज करते हुये या महिमा सुनकर संतों के सतसंग में हाज़िर होते हैं और कोई दिन सतसंग करके उनको महिमा संत सतगुरु और उनके बचनों की समझ में आती है, और फिर चरनों में और संगत में भाव बढ़ता जाता है, और उपदेश लेकर और अभ्यास शौक़ के साथ करके कुछ रस अंतर में मिलता है और उनके प्रेम और प्रतीत को बढ़ाता है ॥

८—इस तरह, हर एक क़िस्म के जीव सतसंग में शामिल होकर कैफ़ियत अंतर में देख सक्ते हैं और अपना परमार्थी भाग दरजे-ब-दरजे

बढ़वा सक्ते हैं, क्योंकि सतसंग में कैसा ही जीव आवे, उस पर एक दिन ज़रूर दया होगी, यानी रास्ता उसके उद्धार का जारी हो जावेगा ॥

९—सतसंग मुवाफ़िक़ गहरे दरिया के है। चाहे कैसा ही मैला और नापाक जीव उसमें आकर बैठे, वह ज़रूर धुल कर एक दिन साफ़ हो जायेगा ॥

१०—सतसंग के बाहर कोई कहीं भी जावे, वह वहाँ दिन २ ज़्यादा मैला होता जावेगा, क्योंकि सब जगह काल और कर्म और मन और माया और पाँच दूत और दसों इन्द्रियों का भारी ज़ोर है कि जिसको कोई नहीं रोक सक्ता, और जिसके मारे तमाम जीव मन और माया के हुक्म में चल रहे हैं और दुनिया की आबादी और रौनक़ और मज़बूती बढ़ा रहे हैं ॥

११—इस वास्ते संत बारम्बार फ़रमाते हैं कि बाहर से सतगुरु का सतसंग और अंतर में सुरत-शब्द योग का अभ्यास जिस क़दर बन सके, बराबर करे जाओ, तो दो, तीन या चार जनम में पूरा काम बन जावेगा, यानी धुर धाम में बासा मिल जावेगा, और जनम मरन और कष्ट और क्लेश से क़तई छुटकारा हो जावेगा ॥

बचन १८

सतगुरू को दीनता पसंद है, सो जो कोई सच्चा दीन होकर उनकी सरन लेवे, उसी को पार पहुँचाते हैं ॥

१—कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु को दीनता पसंद है। जिसके हिरदे में सच्ची दीनता यानी ग़रज़मंदी वास्ते अपने जीव के कल्यान और उद्धार के है, वही सच्चे मन से राधास्वामी

दयाल और संत सतगुरु को सर्व समर्थ समझ कर उसकी सरन लेगा और फिर उसी के जीव का कारज संत सतगुरु अपनी मेहर और दया से आप बनावेंगे ॥

२—जीव अपना नफ़ा-नुक़सान अच्छी तरह नहीं पहिचान सक्ता है, और न भक्ति की करतूत देख कर, इसको ठीक २ विचार आ सक्ता है ॥

३—इस वास्ते कुल कार्रवाई जीव के नफ़े की, ऊपर मेहर और दया संत सतगुरु के मौक़ूफ़ है। जिस तरह वे मुनासिब जानें, जीव को मन और माया के पंजे से छुड़ा कर निज घर में पहुँचाते हैं ॥

४—जीवों पर इस क़दर फ़र्ज़ है कि संत सतगुरु के सतसंग में शामिल होकर बचन चेत कर सुनें और जो कि मानने के वास्ते सुनाये गये हैं, उनको, जिस क़दर बन सके, आहिस्ते २ मानना शुरू करें और चरनों में प्रीति और प्रतीत बढ़ाते जावें। तब वे जीव सतगुरु के मंज़ूर-ए-नज़र और प्यारे होते जावेंगे और उसी क़दर उन पर दया होती जावेगी ॥

५—दया का ज़हूरा और निशान यह है कि मन में सच्चे परमार्थी के, प्रेम नया जागता जावे और संत सनगुरु और प्रेमी जन की सेवा की नई नई उमंगें उठें। कोई दिन ऐसी हालत रहेगी और जब किसी क़दर इरादा इस का पूरा हो जावेगा, फिर कोई पकड़ मज़बूत बाहरमुख कार्रवाई में, नहीं रहेगी और न किसी दूसरे को देख कर या उनके कहने से किसी क़िस्म की आम बाहरी कार्रवाई में गहरी तवज्जह के साथ बर्ताव करेगा। सिर्फ संत सतगुरु के चरन मज़बूती से पकड़ के अपनी भक्ति और प्रेम बढ़ावेगा और अंतरमुख कार्रवाई में तरक़्क़ी करेगा और सतगुरु की भक्ति ख़ास तौर से, और भी प्रेमी जन की सेवा निहायत मुहब्बत के साथ, जारी रक्खेगा ॥

६—दुनिया में भी हर एक को चाहे मनुष्य होवे या हैवान, दीनता और सेवा प्यारी है। बड़े ख़ूँख़्वार और ज़हरीले जानवरों को सीधा करके, मनुष्य उनसे तरह २ के काम और सेवा लेते हैं और खेल खिलाते हैं॥

७—जब कि कुल जानदारों को दीनता और सेवा पसंद है, तो फिर मालिक को और भी संत सतगुरु और प्रेमी जन को भी यही दीनता और सेवा पसंद है। इस वास्ते जो कोई अपने जीव का कल्यान और निज धाम में पहुँचना चाहे, उसको चाहिये कि तलाश करके संत सतगुरु के सतसंग में शामिल होकर उपदेश लेवे और कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरू के चरनों में आरती और प्रार्थना करते रहे, और प्रेम और दीनता के साथ अंतर और बाहर सेवा करके अपना भाग जगाता रहे, तब सहज में उस का कारज उम्दा तौर से बन जावेगा॥

८—बाज़े मानी और अहंकारी रोज़गारी लोग हाकिमों और धन वालों की, बहुत ख़ुशी आर दीनता के साथ सेवा करते हैं, लेकिन संत सतगुरु से अहंकार रखते हैं और उनका दर्शन तक नहीं करते, बल्कि झूठी-सच्ची बुराई और निन्दा उनकी और उनके प्रेमी जन की करके, जीवों को उनके सन्मुख जाने से और सतसंग में शामिल होने से रोकते हैं। ये जीव ज़ाहिर में बड़े और आम जीवों के पूज्य नज़र आते हैं, मगर अंदरूना उनका बिल्कुल स्याह है और आख़िर में उसी कार्रवाई के मुवाफ़िक़ वे चौरासी में भरमेंगे और जब तक कि वे संत सतगुरु से मिलकर अंतर अभ्यास और उनके चरनों में भक्ति नहीं करेंगे, तब तक किसी सूरत में उद्धार इन के जीव का नहीं होगा, यानी अपने निज घर में जो राधास्वामी धाम हैं, कोई जतन करके बासा नहीं पावेंगे। और जो जीव इन

लोगों का संग करेंगे, वे भी चौरासी में भरमेंगे और अपने जीव के उद्धार से महरूम रहेंगे ॥

बचन १९

गुरू-स्वरूप मालिक की महिमा हरि-स्वरूप से ज़्यादा है, क्योंकि यह स्वरूप उद्धार करता है, और दूसरा, यानी हरि-स्वरूप, संसार में फँसाने वाला है ॥

१—जब कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल अति दया करके, वास्ते उद्धार और उपकार जीवों के, इस लोक में संत सतगुरु रूप धारन करते हैं, तो उस स्वरूप और उस समय की महिमा का और उन जीवों की बड़भागता का जो कि उनके चरनों में लगे हैं, किसकी ताक़त है कि वर्णन कर सके या लिख सके ?

२—कुल मालिक राधास्वामी दयाल का निज स्वरूप, पिंड और ब्रह्माण्ड और माया की हद् के परे और पहिले दरजे की चोटी पर है। जैसा कि वह स्वरूप है, कहने में नहीं आ सक्ता, और जैसाकि वह देश है, वह भी वर्णन नहीं किया जा सक्ता। किसी को इस देश और इस स्वरूप की खबर तक भी नहीं है और किसकी ऐसी ताक़त है कि इतनी दूर चलकर और चढ़कर उसको लख सके ?

३—फिर अब उस निहायत दरजे की दया का, जिसके सबब से कि इस आदि और अनादि और अकह और अपार स्वरूप ने उतर कर नर-देह में क़याम किया और सतगुरु रूप धारन करके जीवों का उद्धार जारी फ़रमाया, किसकी ताक़त है कि ज़रा सा भी हाल वर्णन कर सके और शुकराना उस मेहर और दया का अदा कर सके ? आश्चर्य ही आश्चर्य है और इस दया का कुछ वार-पार नहीं है ॥

४—जिस स्वरूप का दर्शन महा दुर्लभ और महा कठिन बल्कि ना-मुमकिन था, उस स्वरूप को नर स्वरूप में मौजूद हर कोई देख सक्ता है और थोड़ी दीनता और सेवा करके, उस स्वरूप की दया बहुत आसनी के साथ ले सक्ता है ॥

५—हज़ारों बल्कि बेशुमार लोग मेहनतें कर कर और पच २ और थक २ हार कर मर गये पर राधास्वामी दयाल के धाम की ख़बर तक न मिली। लेकिन किस क़दर बड़ा भाग उन जीवों का है कि जिनको इस इस समय में राधास्वामी दयाल के दर्शन, बिना चाह ओर इरादे के सहज में और मुफ़्त हासिल हुये ?

६—और किस क़दर कम-नसीबी उन जीवों की है कि जो बा-वजूद हर तरह से मौका मिलने के, फिर भी राधास्वामी दयाल के दर्शनों और सतसंग से महरूम रहे, और बजाय महिमा और गुणानुवाद गाने के, झूठी-सच्ची बातें खड़ी करके उनकी निन्दा करते रहे ?

७—जिस किसी ने कि इस स्वरूप की कुछ भी महिमा जानी, उसका काम बनना शुरू हो गया और जिसने ग़ायब स्वरूप मालिक की पूजा या सेवा या याद करके अपने तईं तृप्ति माना, उसने निपट धोखा खाया और हर तरह से ख़ाली रहा। क्योंकि ख़ुद कुल मालिक का बचन और हुक्म है कि जो कोई पूरे गुरु की मार्फ़त मुझ से मिलेगा, उसको मैं दर्शन दूँगा और सब तरह से उसकी ख़बर लूंगा, लेकिन जिनके मन में ग़ायब स्वरूप की टेक है और गुरु स्वरूप की महिमा नही समाती है, वह हरगिज़ मेरे महल में दख़ल नहीं पावेंगे, क्योंकि हर तरह से गढ़त और सफ़ाई मन और सुरत की, पेश्तर चढ़ाई के, ज़रूरी है। और वह सिवाय सतगुरू

के और कोई नहीं कर सक्ता। इस सबब से कोई भी जीव, बिना सतगुरु की दया के, तीन लोक के पार नहीं जा सक्ते ॥

८—जिन लोगों को सतगुरु का संग प्राप्त हुआ और वे चेतकर बचन सुनते हैं और प्रेम सहित दर्शन करते हैं, उनके मन और सुरत की हालत बहुत जल्द बदलनी शुरू होवेगी, यानी संसारी अंग निकसते और परमार्थी स्वभाव धसते हुये नज़र आवेंगे और दुनिया और उसके सामान की पकड़ ढीली और संत सतगुरू और राधास्वामी दयाल की प्रीति और प्रतीत और सरन मज़बूत होती चली जावेगी ॥

९—जिस किसी ने संत सतगुरु की थोड़ी-बहुत महिमा जानी और कुछ पहिचान की है, तो वह विकारी कामों में बर्तने से आहिस्ते २ हट जावेगा और सकारी कामों में प्रवेश करता जावेगा। जब कोई अर्से में सफ़ाई कामिल हो जावेगी, तब वह शख़्स संत सतगुरु का प्यारा हो जावेगा, और फिर उनकी मेहर और दया से सहज में जगत से न्यारा हो जावेगा ॥

१०—और जो गायब स्वरूप का ध्यान करता है, वह स्वरूप उसको कभी नज़र नहीं आवेगा और न ध्यान का कोई खास असर उसके दिल के ऊपर पैदा होगा कि जिससे भय और भाव कुल मालिक और सतगुरु का उसके दिल में समावे और जब कि सच्चा भय और भाव नहीं हुआ, तब गढ़त मन और सुरत की किस तरह होवे ?

११—और वजह नज़र न आने निज स्वरूप और न पैदा होने असर ध्यान की यह है कि ये लोग निगुरे होते हैं यानी किताबें पढ़ कर विद्या और बुद्धि की मदद से, हर एक बात का अनुमान करते हैं ॥

१२—इन जीवों से सच्चे और पूरे गुरू के सामने दीनता नहीं करी

जा सक्ती और न ये लोग, अहंकार करके, जुगत ध्यान की दरियाफ़्त करते है। इस वास्ते अनुमानी स्वरूप और अनुमानी ध्यान में अटके रहते हैं और अख़ीर में खाली हाथ जाते हैं॥

१३—अब मंत सतगुरु फ़रमाते हैं कि कुल जीवों को लाज़िम और मुनासिब है कि जहाँ कहीं सच्चे और पूरे गुरु की संगत मौजूद होवे, उसमें जा कर ज़रूर शामिल होवें, और जो भाग से पूरे गुरू का दर्शन मिल जावे, तो उनकी सेवा तन-मन-धन से जिस क़दर बन सके, प्रेम सहित करें, और अपने तईं महा बड़भागी समझें कि यह दुर्लभ और अनमोल दर्शन और संग उनको मुफ़्त में और सहज में प्राप्त हुआ। इस दर्शन की क़दर जानना यही है कि जिस क़दर बन सके, उनका सतसंग और भक्ति करें और आपना निज परमार्थी भाग जगवावें॥

१४—जिस किसी ने गुरु स्वरूप की महिमा नहीं जानी, वह जीव महा अभागी रहे और वे बारम्बार चौरासी में भरमेंगे। बाज़े नादान ख़्याल करते हैं कि गुरू स्वरूप तो नाशमान है और हाड़-मास-चाम का बना हुआ है तो जब यह ठहराऊ नहीं, तो इसके ध्यान से क्या फ़ायदा होगा? जवाब इसका यह है कि हरचंद देह स्वरूप नाशमान है, पर उसका आकार (स्वरूप) चैतन्य मंडल में हमेशा क़ायम रह सक्ता है और जिस क़दर ऊंचे चढ़ाया जावे, उसी क़दर सूक्ष्म होता चला जाता है। इस बास्ते जो लोग कि अंतर में ध्यान करते हैं, वे इस आकार स्वरूप का तसव्बुर करते हैं और उसको बराबर संग रखते हैं। वह स्वरूप कभी नहीं नाश होता, और न कभी बदलता है और वह एक दिन निज स्वरूप से मिला कर छोड़ेगा। यह भेद लोगों को मालूम नहीं है, इस सबब से मन-मत ध्यान करते हैं॥

१५—कुल मालिक का निज स्वरूप निराकार और रूप-रंग-रेखा

से ख़ाली और न्यारा है, पर यह स्वरूप सब स्वरूपों के, जहाँ तक कि रूप रंग और रेखा है, परे है। इस वास्ते जब तक कि रास्ते में कुल स्वरूपों से, जो कि उस अरूप ने वक़्त उतार, आदि धार के, दरजे-ब-दरजे धारन किये हैं, न मिलेगा, तब तक निज स्वरूप का दर्शन किसी सूरत में हासिल नहीं हो सक्ता ॥

१६—इस वास्ते जो जीव कि मुताबिक़ राधास्वामी मत के, उपदेश लेकर, अन्तर और बाहर भक्ति भाव में बरतेंगे, वही एक दिन सतलोक में पहुँच कर सत्त पुरुष का दर्शन पावेंगे और फिर राधास्वामी दयाल के निज स्वरूप का जो कि रूप, रंग और रेखा से न्यारा है, दर्शन पाकर परम आनन्द को प्राप्त होंगे ॥

१७—अब ख़्याल करो कि जब तक कि बाहर में सतगुरु से मिल कर, भेद-भाव रास्ते का और तरीक़ा चलने का मालूम नहीं होगा और सतगुरु आप दया करके मेहर और मदद नहीं फ़रमावेंगे, तब तक अंतर के स्वरूप और फिर निज स्वरूप से हरगिज़ मेला नहीं होगा और न रास्ता तै हो सकेगा ॥

१८—इस वास्ते जीव के सच्चे उद्धार के मुआमले में महिमा और मौजूदगी गुरु स्वरूप मालिक की निहायत ज़रूरी है। बग़ैर उनकी दया और मदद के कुछ काम नहीं बन सक्ता यानी न तो भेद, भाव और तरीक़ा अभ्यास का मालूम हो सक्ता है और न सच्चे मालिक और संत सतगुरु की प्रीति और प्रतीत हिरदे में पैदा हो सक्ती है और न बढ़ सक्ती है और न मेहर और दया के परचे अंतर और बाहर मिल सक्ते हैं कि जिन से विश्वास चरनों में बढ़े और नई २ उमंग जागे। फिर सुरत और मन का सिमटाव और चढ़ाई किस तरह होवे ?

१९—जितने मत कि दुनिया में जारी हैं, उन सब में थोड़ी-बहुत कार्रवाई बाहरमुखी है और अंतर-मुख कार्रवाई का ज़िक्र बहुत कम है और जो कहीं कहीं इस क़िस्म की कार्रवाई जारी भी है, तो वह नीचे के मुकामात में है, और चढ़ाई बहुत कम है। इस सबब से बहुत कम जीव ब्रह्माण्ड में पहुँचते हैं और माया के घेर के पार कोई भी नहीं जा सक्ता।

२०—इस वास्ते गुरु स्वरूप की महिमा हर तरह से और हर हालत में, और हर समय में ज़बर है और हरि स्वरूप नाम ब्रह्म का है, उसकी महिमा गुरु स्वरूप के मुकाबले में कम है। क्योंकि उसने जीव को हवाले ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और शक्ति के करके संसार में पैदा किया और माया के भोग और पदार्थों में बाँधा सो अनेक तरह के दुख और क्लेश दुनिया में जीव सहते हैं और जनम-मरन के चक्कर में पड़े हैं और अपने २ कर्मों का फल भोगते हैं, कोई उनका सच्चा हितकारी और छुड़ाने वाला नहीं मिलता, इस सबब से हमेशा दुख-सुख भोगते हैं और माया के घेर में से निकल नहीं सक्ते ॥

२१—गुरु स्वरूप की महिमा यह है कि ऐसे फँसे हुए जीवों को दया करके निकालते हैं यानी बचन सुना कर और उपदेश देकर और अभ्यास करा कर जीव का स्थान बदलते चले जाते हैं यानी पिंड देश से ब्रह्माण्ड में और ब्रह्माण्ड से चढ़ा कर राधास्वामी देश में पहुँचाते हैं कि जहाँ काल और कर्म और कष्ट और कलेश और जनम-मरन बिल्कुल नहीं है और वहाँ पहुँच करके जीव अपने सच्चे माता पिता राधास्वामी दयाल का दर्शन पाकर अमर आनन्द को प्राप्त होता है॥

———

बचन २०

जब तक कि जड़-चैतन्य की गाँठ न खुलेगी, तब तक मन विकारी अङ्गों में थोड़ा-बहुत बर्तता रहेगा और जब कि अन्तर अभ्यास करके गाँठ खुल गई, तब कोई विकार निकट नहीं आवेगा ॥

१--जिस मुक़ाम पर कि सुरत यानी निर्मल चैतन्य, मन और माया के साथ मिल कर नीचे को उतरा, वहीं जड़ और चैतन्य की आपस में गाँठ बँध गई और यह मुक़ाम त्रिकुटी का है ।

२—नीचे उतर कर हर मुक़ाम पर नई मिलौनी होती गई और नई गाँठ भी लगती गई ॥

३—अब नेत्र के स्थान पर जहाँ कि जागृत अवस्था में सुरत की बैठक है, इस क़दर गहरी मिलौनी सुरत चैतन्य की, साथ मन और माया और पांच दूत और दस इन्द्रियों के होगई है कि इन सब का इस स्थान पर भारी ज़ोर और शोर है और जीव की ताक़त नहीं कि वह इनको अपने बल से हटा सके ॥

४—इस वास्ते सब जीव लाचार होकर मन और माया की धारों और तरंगों में बह रहे हैं और दिन-दिन बहते चले जाते हैं ॥

५—जब कभी इत्तफ़ाक़ सुनने परमार्थी बचन का होता है, तो उस वक़्त जीव को भूल और ग़फ़लत जो कसरत से संसार में फैल रही है और निबलता मन और इन्द्रियों की वास्ते रोकने या टालने धारों के नज़र आती है ॥

६—बाजे जीव जो अक्सर दुनिया के हाल को मुलाहिज़ा करते रहते

हैं और अपने मन और इन्द्रियों पर भी, वास्ते दुरुस्ती से चलने के, किसी क़दर ज़ोर भी देते हैं, वे संतों के सतसंग में आकर निहायत ख़ुश होते हैं और वहाँ सब सामान सच्चे मालिक की परख-पहिचान और जीव के सच्चे उद्धार का तैयार देख कर निहायत उमंग और दीनता के साथ, संत सतगुरु के चरनों में प्रीति और प्रतीत करते हैं और दिन दिन सतसंग और सेवा और अभ्यास करके अपने भाग को बढ़ाते हैं ।

७—संत सतगुरु की महिमा कौन वर्णन कर सके है कि जो दया-दृष्टि करें तो अनेक जीवों को चाहे जैसे होवें, खींच कर चरनों में लगा लेवें और विरह और प्रेम अंग की थोड़ी-बहुत बख़्शायश करके, उन जीवों का कारज बनाते चले जावें ।।

८—जो जड़ चैतन्य की गांठ वक़्त उतार सुरत के अंतर में लग गई है, वह बग़ैर कृपा संत सतगुरु के नहीं खुल सक्ती । क्योंकि जब वे अपनी मेहर और दया से मन और सुरत को समेट कर अंतर में चढ़ावेंगे, उस वक़्त मन और माया की धारें ख़ुद-ब ख़ुद सुरत-चैतन्य की धार से, आहिस्ते २ न्यारी होती जावेंगी और बजाय सुरत-चैतन्य को दबा लेने के, अब उसकी धार के आसरे अंतर में चलेंगी और जहाँ तक उनकी हद्द है, अंतर में उलटेंगी ।।

९—जितने विकारी अंग कि इन धारों के एक जगह जमा होने से या कुछ इनके सिमटाव होने से पैदा हुए थे अब इन धारों के मुतफ़रिक़ होने से कमज़ोर बल्कि दूर हो जावेंगे और जो कि सकारी अंग, सतसंग और अभ्यास करके पैदा हुए हैं, वे जीव को उसकी सफ़ाई और प्रीति और प्रतीत के बढ़ाने में मदद देते हैं और दिन २ बढ़ते जाते हैं ।।

१०—इस बात की जाँच हर कोई जो सच्चे परमार्थ का गाहक है,

चंद रोज़ संत सतगुरु का सतसंग करके अपने अंतर और बाहर कर सक्ता है कि किस क़दर सहूलियत और आसानी और जल्दी के साथ सच्चे परमार्थी के मन और सुरत और इन्द्रियों की गढ़त और दुरुस्ती और सफ़ाई होती है और किस कदर दया के साथ प्रेम की बख़शायश करके, परमार्थी के सुरत का सूत चरनों में कुल मालिक राधास्वामी दयाल के लगाया जाता है ॥

११—यह सब महिमा संत सतगुरु की है। जो कोई सच्चा उद्धार चाहे, उसको मुनासिब है कि उनकी या उनकी संगत की खोज करके, जिस क़दर जल्द मुमकिन होवे, उसमें शामिल होकर, अपना परमार्थी भाग जगावे और भेद-भाव समझ कर और जुगत अभ्यास की लेकर कमाई शुरू करे और चरनों में कुल मालिक राधास्वामी दयाल के, और भी संत सतगुर के जो उनका दर्शन भाग से मिल जावे, प्रीति और प्रतीत करे, और दिन २ बढ़ाता जावे और फिर दया को अंतर और बाहर निरखता जावे कि किस क़दर उसकी सम्हाल होती है ॥

१२—खुलासा यह है कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु, जो जीव कि सच्चे मन से उनकी सरन में आया और जो कार्रवाई कि उन्होंने बताई है, वह सचौटी के साथ जिस क़दर बन सके करने लगा, तब वे ज़रूर उसके जीव का कारज जिस तरह मुनासिब होगा, सब तरह से दुरुस्त बनावेंगे और एक दिन निज घर में पहुँचा कर बासा देवेंगे कि जहाँ काल का कष्ट और कलेश और मन और माया का भरम और धोखे की रचना नहीं है ॥

———

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

शब्द तुलसी साहब के

रेख़्ता १

गगन के गुमठ पर ग़ैब का चांदना।
संत बिन भेद नहिं हाथ आवे ॥ १ ॥
हद्द बे हद्द के पार परचा मिले।
होय निज हंस सोइ महल पावे ॥ २ ॥
अमरपुर बास जहँ नाहिं जम त्रास है।
काल का अमल बल नाहिं जावे ॥ ३ ॥
दास तुलसी हुज़ूर दरबार है।
अलख और ख़लक़ दोउ नाहिं आवे ॥ ४ ॥

रेख़्ता २

अगम गढ़ राह का क़िला चढ़ तोड़िया।
नृपति मनराय दल मोह मारा ॥ १ ॥
ज्ञान क़ासिद विवेक नाकी बने।
ज़बर सतसंग दी ख़बर सारा ॥ २ ॥
क्षमा संतोष वैराग दल दया का।
घुरे निस्सान चढ़ क़िला घेरा ॥ ३ ॥
सुरत चढ़ बुरज की सुरंग में धस गई।
गरज गिरनार बल बुरज ढारा ॥ ४ ॥

पाँच पच्चीस मन मोरचा मिट गये।
मोह मन जकड़ ज़ंजीर डारा ॥ ५ ॥

सत्त का अमल दल सुरत की हाकिमी
हुकम जहँ होत है शब्द न्यारा ॥ ६ ॥

दास तुलसी गई फ़तह कर अगम को।
सुरत सजि मिली जहँ प्रीतम प्यारा ॥ ७ ॥

रेख़्ता ३

वेद पुरान क़ुरान में देख ले।
नेत ही नेत कर कहत भागी ॥ १ ॥

जाहि की साख पंडित पढ़ सब कहैं।
बूझ बिन सूझ पढ़ तिमिर लागी ॥ २ ॥

अगम रस राह गुर संत बिन अंत ना।
जक्क मतिमंद का संग त्यागी ॥ ३ ॥

खोल के चसम लख ख़सम को खोज ले।
जान भ्रम खान भौ भीख माँगी ॥ ४ ॥

दास तुलसी घर घट्ट में खोज ले।
पट्ट के खुले से सुरत लागी ॥ ५ ॥

रेख़्ता ४

देख ले जक्त में लख कोई अमर है।
मरन और जिवन विच जीव सारे ॥ १ ॥

अंड और पिंड चर अचर को निरख ले।
काल ने घेर कर पकड़ मारे ॥ २ ॥

देख दिन चार संसार की कार है।
पार बिन सार का भेद हारे ॥ ३ ॥

दास तुलसी कहै बैठ सतसंग में।
माया और मोह कर दूर सारे ॥ ४ ॥

रेख़्ता ५

संत की राह घर अगम के पार है।
सार कोई न्यार नहिं जक्त जाना ॥ १ ॥
मनी के मान से धनी को ना लखा।
संत और साध सोइ नाहिं माना ॥ २ ॥
पकड़ जम जकड़ के बँधे ज़ंजीर में।
अरे बे-पीर पड़े नर्क खाना ॥ ३ ॥
दास तुलसी कहै संत की टहल में।
जीव की काल नहिं करत हाना ॥ ४ ॥

रेख़्ता ६

जगत मद मान में माता। ख़ुदी का ख़ौफ़ नहिं लाता ॥
क़ज़ा सिर पर खड़ी द्वारे। फ़रिश्ते तीर तक मारैं ॥ १ ॥
कमानी काल के हाथा। करे जम जीव की घाता ॥
पड़ा मग़रूर क्या सोवे। बहुरि फिर सीस धुन रोवै ॥ २ ॥
अगर यों सोच अपने में। गये दिन बीत सपने में ॥
बदन मट्टी पवन पानी। मलामत हाड़ मल सानी ॥ ३ ॥
गंदगी बीच अंदर में। बदन बदबोय मन्दर में ॥
अरे नित क्या अन्हाता है। मैल मन का न जाता है ॥ ४ ॥
करेले नीम की भाई। कभी जावे न कड़वाई ॥
अरे दुर्गन्ध का भांड़ा। निरखि कोइ संत ने छांड़ा ॥ ५ ॥

खलक़ दो दिन तमाशा यों । परख पानी बताशा ज्यों ॥
अगर यों जान ज़िन्दगानी । अबर ओला घुले पानी ॥ ६ ॥

अबस तन यों बिनसता है । इधर घर का न रस्ता है ॥
मिरग की नाभि कस्तूरी । भटक ढूँढ़े जो बन मूरी ॥ ७ ॥
तेरा महबूब तेरे में । वस्तु गई ढूँढ़ डेरे में ॥
सगुनिया संत से पावै । आप में आप दरसावै । ८ ॥

करै सतसंग मन टूटै । मलामत बुद्धि की छूटै ॥
गुरू मिल मैल कूँ काढ़ै । ज्ञान की उग्रता बाढ़ै ॥ ९ ॥
सुरत जब सीलता पावै । गगन की राह चढ़ जावै ॥
होय पति प्रीति निरधारा । मिलै तुलसी पदम प्यारा ॥ १० ॥

रेख़्ता ७

अली इक बात सुन उल्टी । बिना समझे लगै उल्टी ॥
कही सब संत ने बोली । गूढ़ मत गुप्त नहिं खोली ॥ १ ॥
सुरत मन बुद्ध नहिं जावै । लखन में कौन बिधि आवै ॥
अरी नहिं वेद ने जाना । कहत कर नेत गुहराना ॥ २ ॥

जुगत जोगी नहीं जानी । ज्ञान नहिं ध्यान विज्ञानी ॥
जगत और भेष नहिं जानै । पढ़े पंडित्त भरमानै ॥ ३ ॥
सकल त्रैलोक लौं गावै । निरंजन जोत ठहरावै ॥
अगम रस राह नहिं सूझै । संत मत कौन विधि बूझै ॥ ४ ॥

अस्त रवि होत अँधियारा । हिये तम रूप में सारा ॥
मिलै गुरु गैल बतलावै । तिमिर तन बीच से जावै ॥ ५ ॥
लखै तब संत के बैना । सुरत सुरमा खुले नैना ॥
तरक ताली खुले ताला । निरख तहँ होत उजियाला ॥ ६ ॥

अधर घर सुरत चढ़ धावै । अगम गति गूढ़ तब पावै ॥
सुरत जब उलट कर बूझा । उलट सब सुलट कर सूझा ॥ ७ ॥
तुलसी तन बीच में हेरा । सुरत मन बुद्धि को फेरा ॥
कहन कुछ और बिधि गावै । उलट की सुलट कर भावै ॥ ८ ॥

रेख़्ता ८

वेद मत मूढ़ ठहरावै । संत मत गूढ़ नहिं पावै ॥
पड़ै भ्रम जाल के मूला । वेद बस कर्म के सूला ॥ १ ॥
करै आली इष्ट मन रच के । मुये भ्रम भाव सब पच के ॥
जीवत कोई दरश नहिं पावै । मुये पर मुक्ति गोहरावै ॥ २ ॥
अली यह जगत सब अंधा । पड़े बस काल के फंदा ॥
कहन नहिं संत की भावै । बाट कहो कौन बिधि पावै ॥ ३ ॥
भूल जुग चार से आई । खानि बस मैल मन माहीं ॥
भटक नर देह अब आया । ज्ञान चित चीन्ह घर पाया ॥ ४ ॥
गहे सत संत के चरना । निकर भौ सिंध से तरना ॥
समझ लख जीव को काजा । मरे सब जक्त की लाजा ॥ ५ ॥
तुलसी तन छूट जब जावे । बहुरि नर देह नहिं पावे ॥
पाहन और इष्ट पानी का । झूंठ भ्रम खान जाने का ॥ ६ ॥
निकर निरवार नहिं पावै । समझ सतसंग से आवै ॥
जगत दिन चार का सँग है । भीख भौ खान में मँगि है ॥ ७ ॥

ग़ज़ल ९

बिंदावन बिंद कीन सोइ साँचा ।
गो सोई गोपिन के साथ बन २ नाचा ॥ १ ॥
गो में मन बिंधा सोई गोबिंद भाई ।
मनुवाँ गोपाल मूढ़ इन्द्रिन माहीं ॥ २ ॥

ग़ज़ल १०

इन्द्री बसुदेव भेव सेवे मन को ।
नाद सोई नंद फंद जाने तन को ॥ १ ॥
जिसने तन सोध लिया सोई जसोधा ।
पंडौ तत पांच और झूठा सौदा ॥ २ ॥

ग़ज़ल ११

करते ईमाम हसन हुसन ताजिया ।
बांस पिंज छील कागज़ों से मढ़ लिया ॥ १ ॥
मुहर्रम दस रोज़ बाज गाज मतलबी ।
नौमी तारीख चांद रात क़तूल की ॥ २ ॥
भ्याने उठ फेर शहर पानी डारैं ।
रोवें सिर कूट कूट छाती मारैं ॥ ३ ॥
बांसों का बना बुत्त कागज केरा ।
करते चालीस रोज़ सोग घनेरा ॥ ४ ॥
ऐसे बेहोश बात बूझें नाहीं ।
कागज़ सँग पिंज रंग रोवैं भाई ॥ ५ ॥
तुलसी यह तर्क तुर्क जानें नाही ।
क़ाज़ी और मुल्ला दोउ अंधे भाई ॥ ६ ॥

ग़ज़ल १२

ब्राह्मण दसरथ का पूत राम को गावें ।
कहि २ भगवान ताहि जक्त सुनावें ॥ १ ॥
माता सुत पूत कौसिला का कहाई ।
भरत चत्र लक्षमन का कहिये भाई ॥ २ ॥

यह तौ जग जीव बीच कर्म विचारा ।
ब्राह्मण जेहि भाष कहैं ब्रह्म अपारा ॥ ३ ॥
पढ़ि २ कर तत्त तीर सूझे नाहीं ।
अंधे से अंध राह क्यों कर पाई ॥ ४ ॥
तुलसी सब जक्त भ्रष्ट ब्राह्मण कीना ।
मालिक मग छांड लोभ मारग लीना ॥ ५ ॥

ग़ज़ल १३

रमता है राम तेरे घट के माहीं ।
घट २ में खोज कहूँ अंते नाहीं ॥ १ ॥
जो २ ब्रहमंड तेरे पिंड पसारा ।
अंदर में देख कहूँ है नहीं न्यारा ॥ २ ॥
कीन्हा वैराट रूप माया घेरा ।
भव में भगवान राम जम का चेरा ॥ ३ ॥
चांद और सूर नैन ताही केरा ।
राहु और केत देत पीर घनेरा ॥ ४ ॥
अपनी जो आप पीर भोगे भाई ।
तासे तैं मुक्ति कहौ कैसे पाई ॥ ५ ॥
भूला वैराट मुक्ति उसकी नाहीं ।
आये औतारी की कौन चलाई ॥ ६ ॥
पत्थर की मूरत का राम बनाया ।
सांचे जो राम काल धर २ खाया ॥ ७ ॥
सीता और राम कहो बन के जोगा ।
कर्मन के बंध बीच करते भोगा ॥ ८ ॥

जड़ सँग जो चेतन की गांठ बँधानी ।
ताते बेहाल राम चारौं खानी ॥ ९ ॥
कहते तुम सब में सब माहिं बिराजा ।
रहता जग बीच खान सब में साजा ॥१०॥
जहँ लग यह अंड खंड कीन पसारा ।
पिंडा चौरासी लाख तुलसी सारा ॥११॥

अड़ियल १४

ढिंग है पूरन वस्तु क़सद कोइ ना करे ।
गुरु संत बिन भेद पार कैसे परै ॥
पढ़ि पढ़ि वेद पुरान ज्ञान कर २ मुये ।
अरे हांरे तुलसी कया सुनै सोइ जौन पौन भूते भये ॥

अड़ियल १५

टोय लिया सतसंग रंग गुरु ने दिया ।
जुगन २ तज भूल आदि घर को लिया ॥
शिव ब्रह्मा और वेद विष्णु नहिं आ सके ।
अरे हांरे तुलसी निरंकाल सोह काल जोत नहिं जा सके ॥

अड़ियल १६

डगर संत का पंथ अंत कहो को लखै ।
जग पंडित और भेष भूल भौ में पके ॥
तीरथ नेम अचार भार सिर पर लिया ।
अरे हांरे तुलसी करम धरम अभिमान जान कर यह किया ॥

अड़ियल १७

हक़्क हज़ूरी संत पंथ कोइ रहै न भाई ।
सत साहब सिरदार और कोइ दूजा नाई ॥

कागज़ स्याही क़लम रहै नहिं लिखने हारा।
अरे हांरे तुलसी आदि अंत नहिं हता नहीं सत असत पसारा ॥

अड़ियल १८

नीच ऊँच नहिं देख पेख सब एक पसारा।
नहिं ब्राह्मण नहिं शूद्र नहीं क्षत्री कोउ न्यारा ॥
नहीं वैस की जात सकल घट एक पसारा।
अरे हांरे तुलसी जो कर जाने दोय खोय तिन जनम बिगारा ॥

अड़ियल १९

शब्द शब्द सब कहैं शब्द का सुनो ठिकाना।
सार शब्द है न्यार पार निर शब्द कहाना ॥
सुन्न शहर से शब्द आदि नित उठे अवाज़ा।
अरे हांरे तुलसी निरशब्दी धुन सुन्न सुन्न से न्यारा गाजा ॥

अड़ियल २०

निरशब्दी बिन शब्द लिखन पढ़ने में नाहीं।
लिखन पढ़न में भया शब्द में आया भाई ॥
अक्षर जहँ लग शब्द बोल में सबहिं कहाया।
अरे हांरे तुलसी निरअक्षर है न्यार संत ने सैन बुझाया ॥

अड़ियल २१

परम हंस कहैं ब्रह्म झूँठ सब कर्म फँसाना।
जड़ चेतन की गांठ ब्रह्म कहु कैसे जाना ॥
चेतन चढ़ै अकाश फोड़ ब्रहमंड निहारा।
अरे हांरे तुलसी बिना पिंड ब्रहमंड कहन नहिं ताकी सारा ॥

अड़ियल २२

जग पंडित और भेष भेद जोगी नहिं जानै ।
जग इन्द्री रस भोग जोग इन्द्री नहिं मानै ।।
संग्रह त्यागन झूँठ सकल यह मन को खेला ।
अरे हांरे तुलसी संग्रह त्यागन करम भरम दोउ फिर १ पेला ।।

अड़ियल २३

पड़े जगत के माहिं भक्ति सुपने नहिं भावै ।
ब्राह्मण पंडित भेष सभी पुनि दान करावै ।।
जिन कीन्हा तम साज ताहिं से नेह न लावै ।
अरे हांरे तुलसी जब जम पकड़े बांह, पूत को कौन छुड़ावै ।।

अड़ियल २४

चले जात नर भूल सूल ता से सहै ।
सतसंग मिले न अंत संत बिन को कहै ।।
सतगुरु मिलें दयाल भेद कहैं मूर को ।
अरे हांरे तुलसी करम काल को मेटि करै जम दूर को ।।

अड़ियल २५

बड़ा जगत जंजाल जाल जम फांसी डारी ।
ज्यों धीमर जल माहिं पकड़ कर मछली मारी ।।
निकर जाय जब प्राण काल चोटी धर खीसा ।
अरे हांरे तुलसी पड़ि हो जम मुख माहिं डाढ़ चक्की ज्यों पीसा ।।

अड़ियल २६

मुशकिल हो आसान जान कोइ ना करै ।
करै तत्त का खोज काज घट में सरै ।।

बाहर है सब झूठ लूट जम लेयँगे ।
अरे हांरे तुलसी तन छूटे बेहाल बहुत दुख देयँगे ॥

अड़ियल २७

भौजल अगम अथाह थाह नहिं मिलै ठिकाना ।
सतगुरु केवट मिलैं पार घर अपना जाना ॥
जग रचना जंजाल जीव माया ने घेरा ।
अरे हांरे तुलसी लोभ मोह बस पड़े करैं चौरासी फेरा ॥

अड़ियल २८

छिन छिन सुरत सँवार लार दृग के रहो ।
तन मन दरपन माँज साज सुत से गहो ॥
लगन लगे लख पार सार तब पाइया ।
अरे हांरे तुलसी संत चरन की धूर नूर दरसाइया ॥

अड़ियल २९

जिन २ सुरत सँवार काल डर ना रही ।
चढ़ी गगन पर धाय पाय पति पै गई ॥
लिया अगम पुर धाम जाय पिउ भेटिया ।
अरे हांरे तुलसी जनम २ भ्रम भाव दाव दुख मेटिया ॥

अड़ियल ३०

ठौर ठिकाना ठाँव गांव पिया को कही ।
निरंकार के पार तहाँ तुलसी रही ॥
सत्तनाम सुख धाम अमरपुर लोक है ।
अरे हांरे तुलसी चौथा पद जद जाय संत सोई कहै ॥

अड़ियल ३१

आदि अंत सब संत सत्त कर कहत सुनाई ।
अगम निगम का भेद देत घट में दरसाई ॥
संत बिना नहिं पार सार को कहै ठिकाना ।
अरे हांरे तुलसी सूरत चढ़ी अकाश फोड़ कर गई निशाना ॥

अड़ियल ३२

भगी सुरत घट माहिं जाय जो देखा भाई ।
सुखमनी सेज सँवार सुन्न में सुरत लगाई ॥
मुकर माहिं दीदार दरश कीन्हा सोई जानै ।
अरे हांरे तुलसी ज्यों स्वांती की बूंद सीप बिरहन पहचाने ॥

अड़ियल ३३

रात दिवस कर खोज रोज़ रस ज्ञान सुनावै ।
घट घट उठै अवाज़ तास कोउ भेद न पावै ॥
पिंड माहिं ब्रहमंड सकल विधि रहा समाई ।
अरे हांरे तुलसी खोल हिये की आंख संत दीन्हा दरसाई ॥

कुंडलिया ३४

गगन मंडल के बीच में झिलमिल झलकत नूर
झिलमिल झलकत नूर सूर कोइ बिरला पावै ॥
करे तत्त का खोज नहीं चौरासी जावै ।
सतगुरु मिलैं दयाल भेद सब उन से पावै ॥
करै संत की टहल महल की खबर लखावै ।
तुलसी मुर्दा जब बनै तब पावै गुरु पूर ॥
गगन मंडल के बीच में झिलमिल झलकत नूर ॥

कुंडलिया ३५

सुरत शब्द चीन्हे बिना यह सब झूठा खेल ।
यह सब झूठा खेल सैल स्रुति सहज समावे ।।
दरपन मांजै राख भाष सतगुरु अस गावे ।
सतसंग करैं बनाय लखै तब सुरत निशाना ।।
भवन गवन कियो बास सुरत घर अपना जाना ।
तुलसी भमक चढ़ाय के पति से कीन्हा मेल ।।
सुरत शब्द चीन्हे बिना यह सब झूंठा खेल ।।

कुंडलिया ३६

शब्द शब्द सब कहत हैं और शब्द सुन्न के पार ।
शब्द सुन्न के पार सार सोई शब्द कहावै ।।
पछिम द्वार के पार पार के पार समावै ।
दो दल कँवल मँझार मध्य के मध्य में आवै ।।
संतन दिया लखाय सार सोई शब्द कहावै ।
तुलसी सत सतलोक से कहुँ कुछ भेद नियार ।।
शब्द २ सब कहत हैं और शब्द सुन्न के पार ।।

सवैया ३७

एक अगत्त अगाध अनाम ।
सो धाम न गाम न ठौर ठिकाना ।। १ ।।
जहां लख्य अलख्य का खेल नहीं ।
सो खलक्क बिचारे ने काहे को जाना ।। २ ।।
ताकी विधि कोई सत लखे ।
सो अलेप अलेप का रूप न नामा ।। ३ ।।

आतम हंस प्रमातम बंस ।
सो इन दोऊ नहीं यह देश पिछाना ॥ ४ ॥
जहां ब्रह्म न जीव अजीव को बास ।
सो चंद न सूर जमीं असमामा ॥ ५ ॥
पिंड ब्रहमंड जो तत्त नहीं ।
जहां सत्तहु लोक नहीं अस्थाना ॥ ६ ॥
सो साहब सत्त के पार बसै ।
सो अगार अनाम जो संत समाना ॥ ७ ॥
जा की विधि तुलसी लखि पाई ।
सो देख अनाम को जान बखाना ॥ ८ ॥

पस्तो ३८

प्यारे बिना पलंग पै जाय हाय क्या करूं ।
आली ये अबर की पीर ज़बर सबर बिन मरूं ॥
पाटी पकड़ के सीस रैन रोय के रही ।
प्यारी पिया बे-पीर बात नेक ना कही ॥ २ ॥
बीती बदन पै क़हर लहर लगन लाल की ।
आह फांसी फँसी मोह ज़बर जक्क जाल की ॥ ३ ॥
ज्यों पपी की प्यास पीव रात भर रटी ।
अरी स्वांति बिना बुन्द भोर भ्यान पौ फटी ॥ ४ ॥
भटकी भौ भेष देख नेक नज़र में ।
तुलसी मुर्शिद की मेहर मूर अजर में ॥ ५ ॥

पस्तो ३६

मेरे दरद की पीर कसक किस से मैं कहूँ ॥टेक॥
ऐसा हकीम होय जोई जान दे दहूँ ।
खटके कलेजे बीच बान तीर से सहूँ ॥ १ ॥
घायल की समझ सूर चूर घाव में रहूँ ।
होये हवाल हाल गला काटि के लहूँ ॥ २ ॥
जैसे तड़फती मीन नीर पीर ज्यों सहूँ ।
जैसे चकोर चंद चाह चित्त से चहूँ ॥ ३ ॥
सोची सुबह और शाम पिया धाम कस गहूँ ।
तुलसी बिना मिलाप छुरी मार मर रहूँ ॥ ४ ॥

पस्तो ४०

महबूब से मिलाप आप अर्ज़ यह करूं ॥टेक॥
हरदम कदम के पास सीस चरन पै धरूं ।
बिन बिन दिदार यार प्यार पेच बिन मरूं ॥ १ ॥
हर वक्त जक्त बीच ज़ुलम जार में करूं ।
मेरा उबार बार बार क़दम से तरूं ॥ २ ॥
होवे रहीम की रमूज़ समझ सुरत को भरूं ।
सतगुरु दयाल हुकम ज़ोर ज़ुलम से लरूं ॥ ३ ॥
तेरी तवक्कके ही में बे-फ़हम सी फिरूं ।
ताक़त बिना हवास होश तुलसी मैं मरूं ॥ ४ ॥

मंगल ४१

अली अलबेली नारि पार पिया पै चली ।
सुन्दर कीन सिंगार सार सुति से मिली ॥ १ ॥

चढ़ी महल पर धाय राह रवि कोट है ।
जैसे प्रीति चकोर चंद चित चोट है ॥ २ ॥

अधर अटारी माहिं लगन पिय से लगी ।
जैसे डोर पतंग संग रँग में पगी ॥ ३ ॥

देखि पिया को रूप भूप कोइ ना लतै ।
ज्यों भुवंग मणि भाव भूमि भूमी दिपै ॥ ४ ॥

तेज पुञ्ज पिया देश भेष कहो को लखे ।
ऐसा अगम अनूप जाय कहो को सके ॥ ५ ॥

मैं पिया के बलिहार प्यार मोहिं से कियौ ।
दीन पलंग सुख साज काज हरषौ हियौ ॥ ६ ॥

जाऊँ नित नित सैल केल पति से करूं ।
जिनकी तिनको लाज काज पति से सरो ॥ ७ ॥

तुलसी कहै विचार सार सब से कही ।
बिन सतगुरु नहिं पार भिन्न कैसे भई ॥ ८ ॥

सावन ४२

सत सावन बरषा भई, सुरत बही गंग धार ।
गगन गली गरजत चली, उतरी भौजल पार ॥ १ ॥

भादौं भजन बिचारिया, शब्दहि सुरत मिलाप ।
आप अपनपौ लख पड़े, छूटें छल बल पाप ॥ २ ॥

कुसल क्वार सतसंग में, रंग रँगो सतनाम ।
और काम आवें नहीं, तिरिया सुत धन धाम ॥ ३ ॥

कातिक करतब जब बने, मन इन्द्री सुख त्याग ।
भाग भरम भवरस तजै, छूटै तब लव लाग ॥ ४ ॥

अगहन अमी रस बस रहौ, अमृत चुवत अपार ।
पाँइ परसि गुरु को लखौ, होय परम पद पार ॥ ५ ॥
पूस ओस जल बुंद ज्यों, बिनसत बदन विचार ।
तन बिनसे पावे नहीं, नर तन दुर्लभ छार ॥ ६ ॥
माह महल पिया को लखो, चखो अमर रस सार ।
वार पार पद पेखिया, सत्त सुरत की लार ॥ ७ ॥
फिर फागुन सुन में तको, शब्दा होत रसाल ।
निरख लखौ दुरबीन से, ज्यों मत मीन निहाल ॥ ८ ॥
चैत चेत जग झूठ है, मत भरमो भव जाल ।
काल हाल सिर पर खड़ा, छूटे तन धन माल ॥ ९ ॥
सुनो साख बैसाख की, भाषि गुरुन गति गाय ।
सब संतन मत की कहूँ, बूझें सत मत पाय ॥१०॥
जबर जेठ जग रीति है, प्रीति परस रस जान ।
आन बात बस ना रहौ, सत मति गति पहिचान ॥११॥
जो असाढ़ अरज़ी करौ, धरो संत स्रुति ध्यान ।
ज्ञान मान मति छांड़ के, बूझौ अकथ अनाम ॥१२॥
बारह मास मत भाषिया, जानें संत सुजान ।
तुलसीदास विधि सब कही, छूटै चारौ खान ॥१३॥

सावन ४३

पिया बिन सावन सुख नहीं, हिय बिच उठत हिलोर ।
बोल बचन भावै नहीं, तन मन तड़पि अतोल ॥ १ ॥
पिय बिन बिरहन बावरी, जिय जस कसकत हूल ।
सूल उठे पति पीर की, धन सम्पति सुख धूल ॥ २ ॥

इत बैरी बदरा भये, गरज घुमर घन घोर ।
घुमर घुमर घर द्वार में, कूकै दादुर मोर ॥ ३ ॥
बीज कड़क कस कस कहूँ, सुधि बुधि रहत न हाथ ।
साथ मिले पिय पंथ को, मारग चलूं दिन रात ॥ ४ ॥
सुरत निरत डोरी करूं, मन मत खंभ गड़ाय ।
लै की लहर ऊपर मिली, झूली सुरत चढ़ाय ॥ ५ ॥
यह सावन तुलसी कहै, खोजो सतसंग माहिं ।
ज्ञान गवन सज्जन करै, बूझै सत मत पाय ॥ ६ ॥

सावन ४४

पिया बिन बिरहन बावरी, दइ दुख दियोरी कठोर ।
मोर खबर सुधि ना लई, जों बिन चन्द चकोर ॥ १ ॥
चकवा चकई बिछोह की, बरनों कौन बयान ।
नदिया पार चकवा रहै, चकई वार विलाप ॥ २ ॥
रैन बिलग सुनती हती, मोरे हिये बरतत आज ।
बिलग पिया से मरिबो भलो, यह दुख सहो न जात ॥ ३ ॥
सब सिंगार फीका लगे, पिया बिन कछु न सुहाय ।
हाय हाय तड़फत रहूँ, कहो केहि जाय सुनाय ॥ ४ ॥
लोग बटाउ री विदेश के, नहिं पर पीर पिछान ।
चरन बिना चहुँ दिश फिरी, नहिं कुछ जिया जुड़ान ॥ ५ ॥
कल्प कल्प कलपत भये, जुग जुग जोवत बाट ।
कोई री सुहागन ना मिलो, पूछों पिया घर घाट ॥ ६ ॥
नर तन नगर डगर मिलै, कहें सब संत सुजान ।
फिर पशु पंछिन में नहीं, जड़वत जीव भुलान ॥ ७ ॥

बिन सतगुरु व्याकुल हिये, जियरा धरत न धीर ।
पीर पिया बिन को हरे, तुलसी गगन गंभीर ॥ ८ ॥

सावन ४५

मोरे पिय छांड़ी रे विदेश में सइयाँ सँग भयोरी बिछोह ॥टेक॥
बैरनन नींद न आवही, सखी सुख भोर न होय ।
रोय रैन अँखियां बहीं, सखी भर स्वांस उसास ॥ १ ॥
बिरह लहर नागिन डसे, बिन सइयां तड़फ उचाट ।
चमक उठे जैसे बीजुली, छतियन धड़क समात ॥ २ ॥
प्रबल अगिन हिय में उठे, एरी धुवां प्रगट न होय ।
सोई अकेली सेज पै, पूरब लिख्यौ री विजोग ॥ ३ ॥
खबर खोज कासे कहूँ, पतियां लिखूं केहि देश ।
अंग भभूत रमाइहौं, करिहौं मैं जोगिन भेष ॥ ४ ॥
सतगुरु सोधि सरने रहूँ, गहूँ पिय डगर निवास ।
मोर मनोरथ सुरत से, तुलसी मिलन मिलाप ॥ ५ ॥

चरचरी ४६

पी की मोहिं लहर उठत खुटत रैन नाहीं ।
कहा कहूँ करमन की रेख हिय की दरदाई ॥टेक॥
अँखियाँ ढुर ढुरत नीर सखियां सुख नाहिं ।
पपिहा पिउ पिउ के बोल खोलत खिसियाई ॥ १ ॥
जियरा जर जर पिरात रात रटत साईं ।
लाई सुरति चरन सरन हित चित चिन्हबाई ॥ २ ॥
मेरे मन की मुराद साध संगत चाही ।
खोजै खुल खुल विशेष लेखे अपनाई ॥ ३ ॥

तुलसी तत मत बिलास पास प्रेम छाई ।
पाई धर धधक धीर रमक सी जनाई ।। ४ ।।

चरचरी ४७

बिरह में बेहाल विकल सुध बुध बिसराई ।
रजनी नहिं नींद नेन दीदा दरसाई ।।टेक।।
सखियाँ सुन सेज पास गाज परत आई ।
पलँगा पर पांव धरत नागिन डस खाई ।। १ ।।
तड़फत तन तोल बोल बाक बचन नाहीं ।
पल पल पी की उसास स्वांसा भरि आई । २ ।।
मोरा कुछ बल विवेक एक चलत नाहीं ।
सतगुरु बिन मेहर क़हर अजगुत दरसाई ।। ३ ।
तुलसी तू तरक बांध साध समझ लाई ।
गाई सब संत अंत सूरत लखवाई ।। ४ ।।

बिलावल ४८

तुलसी जग हाल साल, काल जाल माहीं ।।टेक।।
पंडित और भर्म भेष । देखा सब अंध अचेत ।
भूला व्रत इष्ट टेक । पाहन लौ लाई ।
तीरथ अश्नान ध्यान । खोजत नर चार धाम ।
ढूँढ़त पोथी पुरान । मूरत मन माहीं ।
देखा सब जक्त भेष । नेक खोज नाहीं ।। १ ।।

कोइ कोइ जपें इष्ट जाप । आपा चीन्हें न आप ।
बांधे सिर पोट पाप । साफ़ नर्क जाई ।
बूझै सतसंग सार । पावै संतन की लार ।

मन का मद मूर मार। सार पार पाई।
जाना मन भूल तोड़। पोढ़ सुरत साईं ॥ २ ॥

छिन-छिन तन छीन जात। बूझै नहिं एक बात।
तेरे कोऊ न साथ। जात पांत नाहीं।
सम्पति सुख लार छार। निरखो सुत नहिं नार।
कुटंब बंधु लोक चार। भूला भल भाई।
यह कोउ तेरे न लार। जग असार जाई ॥ ३ ॥

तुलसी तन होत छार। या से अगमन बिचार।
कीजै भौ उतर पार। नौका नसि जाई।
बूझै कोई संत साध। सूझै तब अंत आद।
जूझै चढ़ सुरत नाद। लख अनाद पाई।
पावै पद पुरुष दाद। साध सुरत माहीं ॥ ४ ॥

मानौ सुज्ञान सीख। मँगि हौ भौ खान भीख।
भाखो अज अमर लीक। देख द्वार माहीं।
जनमन और मरन छूट। करमन की फांस टूट।
सूझा मत सांच झूठ। लूटा जग जाई।
तुलसी मुख कहै बैन। नैन नज़र आई ॥ ५ ॥

शब्द ४६

बिरह बिमल बैराग। राग तज शब्द सुनो रे ॥टेक॥
मिरगा रोज़ मौज बन माहीं। चरत फिरत भौ भाग ॥
बधिक बीन बन बीच बजाई। सुनत स्रवन लौ लाग ॥ १ ॥
धनुवां पकड़ पारधी मारा। सुधि बुधि बिसरस राग ॥
मारत बान तान मिरगा को। तुरत प्रान तन त्याग ॥ २ ॥

जैसे चंद सती सत मारग। तजि धन धाम सुहाग ॥
मुरदा संग तरंग जरन की। लै मन तन अनुराग। ३ ॥
तुलसी श्रवण सुने अनहद को। सुन मन मृग मत माग ॥
सती सूर सूरा मन माहीं। सुन धुन पूरन भाग ॥ ४ ॥

शब्द ५०

मान रे मन मस्त मसानी ॥टेक॥
पोख पोखि तन बदन बढ़ाया।
सो तन बन जरे अग्नि निदानी ॥ १ ॥
कुटुम्ब बंधु भइया सुत नारी।
मरत कोऊ संग जात न जानी ॥ २ ॥
यह संसार समझ दुखदाई।
पर बंधन नहिं पड़त पिछानी ॥ ३ ॥
जोइ जोइ पाप पुन्य जिन कीन्हा।
आप आप भौ भुगतत खानी ॥ ४ ॥
फूला वृक्ष फूल गिर जावे।
तें फूले पर कौन ठिकानी ॥ ५ ॥
तुलसी जगत जान दिन चारी।
भारी भौ बिच फांस फँसानी ॥ ६ ॥

शब्द ५१

कोई बूझै न परख प्रबन्ध। शब्द की संध को ॥टेक॥
ज्ञानी गुनी कवीश्वर पंडित। क्या जाने जग अंध ॥
पंथ अंत कोइ भेद न पावै। मन मूरख मति मंद ॥ १ ॥

आस अनंत अपार असंखन । माया के फरफंद ॥
आवा गवन भवन में भूले । सहन लगे दुख दुन्द ॥ २ ॥
ऋषि मुनी तप बन फल खाते । सब जड़ मूली कंद ॥
जगत त्याग वन भाग बसत हैं। रिधसिध उड़ेरी सुगंध । ३ ॥
आपन में आपा नहिं देखा । अन्दर माहिं अनन्द ॥
सतगुरु गगन सोध नहिं कीना । चीन्हा न मन मकरंद ॥ ४ ॥
तुलसी तुरत तत्त तन खोजै । छाँड़े धोखे धंध ॥
सुरत डोर सुन द्वार शब्द में। पिया संग केल करंद ॥ ५ ॥

शब्द ५२

कोइ सतगुरु मिलेंरी दयाल । काढ़ें जम जाल से ॥टेक॥
करता काल कलेवर कीन्हा । दीन्हा भौ भ्रम डाल ॥
लख चौरासी जिया जोन में । फिरते बहुत बिहाल ॥ १ ॥
कहो उनकी किरपा बिन दूजा । कौन करे प्रतिपाल ॥
कल्प कल्प कागा कर राखे । कैसे होय मराल ॥ २ ॥
चहुँ दिसि फेर रह्यो चक्कर को । दूसर चलै न चाल ॥
को रोकै सन्मुख होय जाके । कठिन कुलाहल काल ॥ ३ ॥
सतसंग बिना दीन दिल दृढ़ कै । केहि विधि होय निहाल ॥
संत सरन लीन्हे बिन कोई । लिखा रे मिटें नहिं भाल ॥ ४ ॥
तुलसी तीन लोक का नायक । सब का लूटै माल ॥
सतगुरु चरन सरन जो आवै । सो जिव देत निकाल ॥ ५ ॥

शब्द ५३

कोइ सतगुरु देव री बताय । चरन गहुँ ताहि के ॥टेक॥
चहुँ दिसि ढूँढ़ फिरी कोइ भेदी । पूछत हौं गुहराय ॥

उनसे कहूँ बिथा सब अपनी । केहि बिधि जीव जुड़ाय । १ ।।
जो कोइ सखी सुहागन होवै । कहे तन तपन बुझाय ।।
पिउ की खोल खबर कहे मोसे । मरूं री विकल कर हाय ।। २ ।।
जो न्यामत दुनियाँ दोलत की । सो सब देऊँ बहाय ।।
बारम्बार वार तन डारूं । यह कहँ मोल बिकाय ।। ३ ।।
बिन स्वामी सिंगार सुहागिन । लानत तोबा ताय ।।
पिया बिन सेज बिछावे ऐसी । नारि मरै विष खाय ।। ४ ।।
सतगुरु विरहिन बान कलेजे । रोवै और चिल्लाय ।।
हाय २ हिय में निस बासर । हर दम पीर पिराय ।। ५ ।।
इह भ्रुंड में कोइ पाक पियारी । पिया दुलारी आहि ।।
मैं दुखिया हौं दर्द दिवानी । प्रीतम दरस लखाय ।। ६ ।।
तुलसी प्यास बुझै प्यारे से । चढ़ घर अधर समाय ।।
किरपावंत संत समझावैं । और न लगै उपाय ।। ७ ।।

शब्द ५४

जिनके हिरदे गुरु संत नहीं । उन नर औतार लिया न लिया ।।टेक।।
सूरत विमल बिकल नहिं जाके । बहु बक ज्ञान किया न किया ।। १ ।।
करम काल बस उद्र निहारा । जग बिच मूढ़ जिया न जिया ।। २ ।।
अगम राह रस रीति न जानी । बहु सतसंग किया न किया ।। ३ ।।
नाम अमल घट घोंट न पीना । अमल अनेक पिया न पिया ।। ४ ।।
मोटे मात जात ज़िंदगी में । सिर धर पैर छुया न छुया ।। ५ ।।
तुलसीदास साध नहिं चीन्हा । तन मन धन न दिया न दिया ।। ६ ।।

टप्पा ५५

प्यारी पिया पैहौं कौने भेस ।
मैं तौ हारी ढूंढ़ि सारा देस ।।टेक।।

जोग जुगत जोगी ठगे । ब्रह्मा विश्नु महेश ।।
बेद बिधी बंधन भये । देव मुनी और सेस ।। १ ।।
ब्रह्मचार बैराग लौ । संन्यासी दुरबेस ।।
परम हंस बेदान्त को । पढ़ि भाषत ब्रह्म नरेस ।। २ ।।
तीरथ बरत अन्हान को । चार बरन परवेस ।।
काल करम करता करै । बाँधे जम घर केस ।। ३ ।।
जगत जाल जंजाल से । कोइ नहिं पावत पेस ।।
मैं सतगुरु सरना लिया । तुलसी सकल तज ऐस ।। ४ ।।

टप्पा ५६

प्यारी पिया पीर खली आधी रतियां ।।टेक।।
सोवत समझ उठी अपने में । क्या कहुँ वर्ण बिपतियां ।। १ ।।
चोली बंद बदन बिच खटके । उमँग उमँग फटे छतियां ।। २ ।।
रोवत रैन चैन नहिं चित में । क्रूर करम की बतियां ।। ३ ।।
तुलसी देश ऐश बिन पियके । सोच लिखूं कित पतियां ।। ४ ।।

टप्पा ५७

प्रीतम प्रीति लगन मन फँसियां ।।टेक।।
निरखत नैन चैन चितवन में । दीप दृगन चढ़ चसियां ।। १ ।।
पल पल लगन लगी वहो मारग । सुरत सिखर पर बसियां ।। २ ।।
दृढ़ कर डोर पोढ़ पद परसी । लख गुर गगन परसियां ।। ३ ।।
तुलसी तलब तलाशी पाव । धार अधर धर धसियां ।। ४ ।।

टप्पा ५८

लाज कह कीजैरी घूंघट खोलो आज ।।टेक।।
लाजहि लाज अकाज भयो है । सुन्दर यह तन साज ।। १ ।।

सब तन अंग निहंग निहारे। परदे प्रगट बिराज ॥ २ ॥
स्वामी सब अंतर गति जाने। ब्याकुल सकल समाज ॥ ३ ॥
तुलसी तन मन बदन सम्हारो। सोइ साहब सिरताज ॥ ४ ॥

ठुमरी ५६

बिसरी अधर घर प्यारी रे ॥टेक॥

मैं चित चोर मोर मन मोटा। खोट खोट धर धारी रे ॥ १ ॥
अंजन अलख पलक नहिं दीन्हा। छाई अधम अँधियारी रे ॥ २ ॥
संगत साध आदि नहिं चीन्हा। उरझी भेष भिषारी रे ॥ ३ ॥
तुलसी तीर गुरन लखवाई। जब देखी उजियारी रे ॥ ४ ॥

बिहाग ६०

बिपति कासे गाऊंरी माई। जगत जाल दुखदाई ॥टेक॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवे। जम दारुन जग खाई ॥ १ ॥
पिय के ऐन बिन चैन न आवे। हर दम विरह सताई ॥ २ ॥
जा दिन से पिय सुधि बिसराई। भटक भटक दुख पाई ॥ ३ ॥
तुलसीदास स्वांस सुख नाहीं। पिय बिन पीर सताई ॥ ४ ॥

बिहाग ६१

आलीरी हिय हर्ष न आवै। ज्यों काले की लहर सतावै ॥टेक॥
तन मन सुध बुध सब बिसराई। अन पानी नहिं भावे ॥ १ ॥
काह करूं कित जाऊँ सखीरी। पिय बिन नींद न आवै ॥ २ ॥
है कोइ सतगुरु पिय को लखावै। पत पिया पीर बुझावे ॥ ३ ॥
तुलसी तड़फ तड़फ तन सूखे। मन बिच थिर नहिं आवे ॥ ४ ॥

बिहाग ६२

सखी मोहिं नींद न आवैरी । एरी बैरन बिरह जगावै ॥टेक॥
सूनी सेज पिया बिन ब्याकुल । पीर सतावै री ॥ १ ॥
रैन न चैन दिवस दुख ब्यापै । जग नहिं भावै री ॥ २ ॥
तड़फ़त बदन बिना सुख सइयां । सब जरि जावै री ॥ ३ ॥
विषधर लहर डसै नागिन सी । ज्यौं जस खावै री ॥ ४ ॥
देवै मौत दई बिरहन को । होते मरि जावै री ॥ ५ ॥
कैफ़ बिना तुलसी तन सूखै । जिय तरसावै री ॥ ६ ॥

बिहाग ६३

भोर कोइ जागो रे जागो । क्या सोवै नींद भर घोर ॥टेक॥
बदली घुमँड़ घोर अँधियारी । पहरू करत हैं शोर ॥
जागे जिन २ तपन निवारी । घर मूसत हैं चोर । १ ॥
पांच पचीस बसैं घट माहीं । सांई निपट कठोर ॥
मोर और तोर देत झकझोला । चलत नेक नहिं ज़ोर ॥ २ ॥
तलबी तीन द्वार पर प्यादे । साधे कपट की डोर ॥
आवत जात नेक नहिं रोकैं । एक न मानत मोर । ३ ॥
तुलसीदास बाज यह बसती । कह कह हार निहोर ॥
कोतवाल कलबूत समाना । हाकिम अंधा घोर ॥ ४ ॥

सोरठा ६४

कछू ना सुहावै मोको पिया के वियोगी ॥ टेक॥
बिरह की बेली हेली फैली चहुँ दिसको । दरद दुखी जस रोगी ॥ १ ॥
अस री हिलोर मोर मन आवै । तन तज अब न जियोंगी ॥ २ ॥
हार सिंगार सखि नीक नहिं लागै । माहुर घोर पियोंगी ॥ ३ ॥

रैन न चैन दिवस दुख बीते । आवत नींद न औंगी ॥ ४ ॥
तुलसी तलब मिटे सतगुर से । चित धर चरन छुओंगी । ५ ॥

धनासरी ख़्याल ६५

एरी आली संत चरन सुख बास ॥टेक॥
अंत सखी सुख नेक न पैहौ । सहिहो री जम की त्रास ॥ १ ॥
भाई बंद कुटंब सुत नारी । इन संग रहो री उदास ॥ २ ॥
यह सब समझ बूझ भौसागर । लख चौरासी फाँस ॥ ३ ॥
जुग जुग जनम धरै तन तुलसी । आवा गवन निवास ॥ ४ ॥

कान्हरा ख़्याल ६६

नाम लो री नाम लो री । ऐसी काहे सुरत सुधि भूली री ॥ टेक॥
बाद बिबाद तजो बहु बायक । नाहक दुख सहौ सूली री ॥ १ ॥
काल कराल भुलावत करमन । भ्रम तज भज पद मूली री ॥ २ ॥
बीतत जन्म नाम बिन लानत । चालत मेटि अदूली री ॥ ३ ॥
स्वाँस स्वाँस जावे तन तुलसी । क्यों भव सिंध सँग फूली री ॥४॥

कहरवा ६७

कोइ चुरियाँ लो री बँगरियाँ ॥ टेक ॥
चुरियाँ मन मनिहार पुकारे । पार अधर घर गढ़ियाँ ॥ १ ॥
छल्ला गढ़ सुन धाम सुनरियाँ । पहिनो अगम अँगुरियाँ ॥ २ ॥
फूल फूल माला दई मलियाँ । पहिनो प्रेम पियरियाँ ॥ ३ ॥
सालू सुरत सजी सिंगारा । सत मत घेर घघरियाँ ॥ ४ ॥
अँगिया अंग अंग से न्यारी । गो गुन गन बस करियाँ ॥ ५ ॥
तुलसी तेज तरस से निकली । सौदा सतगुरु करियाँ ॥ ६ ॥

सारँग ६८

नहिं लागत लाज महंत को ॥ टेक ॥
गाड़ी ऊँट अटा ले चालत । लानत ऐसे पंथ को ॥ १ ॥
चेला करत फिरत घर घर पर । आस बास दुख अंत को ॥ २ ॥
इंद्री सुख भोजन नित खावत । जम धर तोड़त दंत को ॥ ३ ॥
काया बस माया सँग फूले । भूल मूल तज कंथ को ॥ ४ ॥
बदन बनाय काया जिन कीन्हा । चीन्ह चरन लख संत को ॥ ५ ॥
गुर घट भान जान सिष किरनी । नभ चढ़ मिल गुर मित्र को॥ ६ ॥
कनफूंका सँग बाट न पैहौ । गुरु चेला बहे अंत को ॥ ७ ॥
गुरु अपना गुरु आदि न जाना । खानी परत परंत को ॥ ८ ॥
तुलसी किरन गगन गुरु भेंटत । मेटें काल दयंत को ॥ ९ ॥

होली ६९

गगन चढ़ूं कहो कैसे । मोहिं उपजत लाख अँदेसे ॥टेक॥
डगमग पाँव होत पौड़ी पै । सोच उठै जिय में से ॥ १ ॥
केहि बिधि गैल चलूं मारग को । भटक भई हियरे से ॥ २ ॥
पल पल पीर खलै प्रीतम की । मीन तड़फ जल जैसे ॥ ३ ॥
बिन दीदार दुखी जियरा में । जनम पशू तन तैसे ॥ ४ ॥
तुलसी मूल भूल भरमानी । रहि चेत चरन बिन लेसे ॥ ५ ॥

बारह मासी ७०

गुइयां री गुन गोह गिरा बिच मैं न रहूँगी ॥टेक॥

सवैया

अली असाढ़ के मास बिलास ।
सो बास पिया बिन मोहिं न भावै ॥

गर्ज अकाश कि भास रबी ।
छवि बादर की कहि बात न जावै ।।
बिजली चमके घन घोर घटा ।
घर घाट पिया कोउ नेक न पावै ।।
गोह गुना गिरि बीच बसी ।
सो फँसी तुलसी चित चेत न लावै ।।

कड़ी

अगमन आयो असाढ़हिं मास ।
गरजत गगन रवी तज भास ।।
भान घटा नभ नैन निहार ।
सूरत समझ चली नभ पार ।।
पिय पद साज गहूँगी ।। १ ।।

सदैया

सावन शोर करैं वन मोर ।
सो दादुर प्यास पपीहा पुकारी ।।
ताल मही हरी भूमि भई ।
सो नहिं कोइ पंछी न चोंच चुकारी ।।
मैं मन में सुनके बिगसी ।
जस ताल रबी बिच कंज सुखारी ।।
जो तुलसी गुण माहिं रही ।
सो भई जस साथ के संग दुखारी ।।

कड़ी

सावन सरवर नीर अपार ।
बरसत गगन अखंडित धार ॥
गैल गली सब हरियल भूमि ।
नील सिखर चढ़ी सूरत घूम ॥
चमक बिजली की सहूँगी ॥ २ ॥

सवैया

भादों को भेद कहूँ जो निषेद ।
सो खेद करम को काढ़ि निकारी ॥
सूरत सूर भई मत पूर ।
सो नागिन नारि डसी जस कारी ॥
चेत चली सो अकाश अली ।
सो गली गुन गोह से होत निनारी ॥
जो तुलसी सुख नारि भई ।
सो गई लै लार लगन के लारी ॥

कड़ी

भादों भर्म भेद सब छूट ।
काया कर्म कलस गये फूट ॥
नागिन विरह मूल डस खाई ।
यह विधि सूरत गगन समाई ॥
लगन सँग लार लरूँगी ॥ ३ ॥

सवैया

कूर कुवार कुमति को जार ।
सो बारि बनी सब खाक मिलाई ॥

कूकर काम भये जो निकाम ।
सो ठामहिं ठाम जो भूमि भुलाई ॥
सुन सूरत भाल सो ताल भई ।
गइ मानसरोवर पैठ अन्हाई ॥
तुलसी सोइ सत्त के संग अड़ी ।
सो खड़ी सुन शब्द में जाय समाई ॥

कड़ी

कुमति कुँवार जार जस फूस ।
कूकर काम रहे सब भूस ॥
मानसरोवर सरस अन्हाई ।
सूरत समझ चली रस पाई ॥
शब्द सुन सार भरूंगी ॥ ४ ॥

सवैया

कातिक किरन भये शशि सूर ।
सो दूर भये दल बादल सारे ॥
भूमि में थीर भये जल नीर ।
सो नारे नदी स्रुत सिन्धु सम्हारे ॥
सिंधहिं बुन्द मिले चढ़ चाल ।
सो काल कला जम दूर निकारे ।
तुलसी जिन चाप धनू पै धरी ।
सो करी सम सूरत संत पुकारे ॥

कड़ी

कातिक किरन भास भये सूर ।
सलितहिं समुन्द मिले जस मूर ॥
बुंद सिंध बिन फिरत बेहाल ।
मिल गया शब्द कटे जम काल ॥
सुरत घर चाप चढ़ूंगी ॥ ५ ॥

सवैया

अगहन मास अनंद अली ।
सो चली पिया पास पलंग बिछाई ॥
पायो पलक के पार पती ।
सो सती सत सूरत सार लखाई ॥
सेज मिलाप भयो पति आय ।
सो जीवत जनम सुफल्ल कहाई ॥
तुलसी मन में सुख चैन भई ।
सो गई बर आदि सो साध समाई ॥

कड़ी

अगहन अली पिया पलँग बिछाव ।
जीवत जनम मिलो अस दाव ॥
पिया की सेज सुख सज सुत सार ।
नित प्रति केल करूं पति लार ॥
अली बर आदि बरूँगी ॥ ६ ॥

सवैया

पूस पुरष की होश भई ।
सो गई सतलोक में शोक सिहारी ॥

प्यारी सखी गुर गैल गई ।
सो कही पद प्यारे की चोज चिन्हारी ॥
छाय रही सुन मंदर में ।
घर घाट पिया लख बाट बिचारी ॥
पिय रस रीत की जीत भई ।
सो कही तुलसी जिन नैन निहारी ॥

कड़ी

पूस परम पद पुरुष निवास ।
सुरति सतलोक करे नित बास ॥
शिष गुरु गवन मिले मत पाय ।
प्यारी पुरुष रही घर छाय ॥
सखी सुख जान कहूँगी ॥ ७ ॥

सवैया

माह मनोहर महल चढ़ी ।
सो खड़ी खिड़की तक तोल बखानी ॥
जान कही सोइ साध सुजान ।
सो मानी जिनी सोइ पास समानी ॥
पानी पै दूध की छान करी ।
सो भरी लख सूरत शब्द ठिकानी ॥
जीवत ही मर जात सही ।
सो कही तुलसी जिन भाख निशानी ॥

कड़ी

माह महल झँझरी चढ़ ताक ।

पिया की सेज सुख सत सत भाख ॥
कोइ कोइ सज्जन साध बिलास ।
पहुँचै अगम पिया घर बास ॥
कही जिन जिवत मरूँगी ॥ ८ ॥

सवैया

फागुन फ़हम करोरी सखी ।
लख जात बह्यौ संसार असारा ॥
सूरत सार के पार लखे ।
सो थके मन मारग मौज अपारा ॥
संत सिरोमन सैर कही ।
सो गई गुर मारग संझ सबारा ॥
प्यारे पिया को पकड़ के गही ।
सो जकड़ हिये में जंजीरहि डारा ॥

कड़ी

फागुन फ़र्क़ भयौ संसार ।
जिन-जिन सुरत करी तन जार ॥
सतगुरु मूल मता मुख बैन ।
जब लख लखी संत की सैन ॥
समझ सोइ पकड़ धरूंगी ॥ ९ ॥

सवैया

चैत चली सो सुनो री अली ।
गइ गैल गली सुन रीत निहारी ॥

सेत सरासर भेद लखी ।
सो पकी बिधि बेनी के घाट बिचारी ॥
सारी सरोवर ताल तकी ।
पक प्यारी अन्हाय के काज सम्हारी ॥
जो तुलसी चढ़ के जो चली ।
सो अली खिड़की विधि आन पुकारी ॥

कड़ी

चेत चली जिन चरन निहार ।
सो उतरी भौ सागर पार ॥
आदि रु अंत पंथ घर बाट ।
सो पद परस त्रिबेनी घाट ॥
चीन्ह खिड़की को चहूँगी ॥१०॥

सवैया

बैन बिधी बैसाख बिलास ।
सो पास पिया नित सेल सँवारे ॥
यार के सार बिहार करे ।
सो बिचार बिधी सुत तार निहारे ॥
प्रीतम मेल भया रस केल ।
सो केल किवार के पार पुकारे ॥
तुलसी तन में जिन जान लखे ।
सो भखे पिया पास के भास निकारे ॥

कड़ी

करि बस बास बैसाख बिलास ।
छूट गई तन मन की आस ॥
प्रीतम प्यारी मिले मन खोल ।
रँग रस रीत सुने सब बोल ॥
पिया सँग केल करूँगी ॥११॥

सवैया

जेठ की रीत करी मन जीत ।
सो प्रीत की बात की सैन सुनाई ॥
चेत चली तज काल बली ।
सोइ जाल जली दुख दूर नसाई ॥
जिम धाय जो धीर गम्भीर नदी ।
सुत सार सम्हार जो शब्द समाई ॥
यह मुख बैन कहे तुलसी ।
सो लसी सत द्वार जो शब्द को पाई ॥

कड़ी

जेठ ज़बर तन मन सुत रीत ।
सेत सबज़ चली अगमन जीत ॥
सुर्ख़ ज़र्द रँग श्याम भुलान ।
पांचोइ तत्त करी नहिं कान ॥
सखी सुन पार फिरूंगी ॥१२॥

सावन ७१

प्रथम सरन सतगुरु गहो, निरखौ नैन निहार ।
बार पार निरखत रहो, गुरु पद पदम अधार ॥ १ ॥
संत चरन चित हित करो, सूरत संध सँवार ।
आदि अंत घर लखि पड़े, सूझे पिउ दरबार ॥ २ ॥
अब जग की गति मति कहूँ, बिन सतसँग अँधियार ।
मन इंद्री गुण लोभ में, बिन सत नाम अधार ॥ ३ ॥
यह भव सिंध अगाध है, बूड़े भव जल धार ।
बिन सतगुरु भरमत फिरे, कैसे उतरे पार ॥ ४ ॥
सुरत शहर घर आदि है, पावे सज्जन साध ।
दुरजन दुख सुख में रहै, करम बंद बहै बाद ॥ ५ ॥
जग रचना जम काल की, फँस २ मुये हैं अजान ।
ज्ञान गली चीन्हे बिना, भरमत सकल जहान ॥ ६ ॥
पिउ परचै पाये बिना, निस दिन फिरत बेहाल ।
जुगन २ भटकत फिरे, निज घर सुरत न चाल ॥ ७ ॥
पिय की सेज सूनी पड़ी, कीन और लगवार ।
तासु पुरुष घर ना मिले, भयौ कर्म भवभार ॥ ८ ॥
जिन पिया की बिरहा बसै, छिन २ छीण शरीर ।
नैन नीर ढुर २ बहै, कसके तन मन पीर ॥ ९ ॥
प्रेम प्रीति नदियाँ बहैं, सावन भादों मास ।
रात दिवस लागी रहै, बरसे झड़ी निश बास ॥१०॥
पिया की पीर पल पल बसै, सूरत अंत न जाय ।
जैसे चंद्र चकोर गति, निरखत नाहिं अघाय ॥११॥

गरज घुमर बदरी बहै, चमके चम चम बीज ।
मोर शोर पिउ २ करे, तड़फ २ तन छीज ॥१२॥

धुन सुन धीर न आवही, पाती लिखूं पिय पास ।
मन सूरत कासिद करूँ, पहुँचै अगम निवास ॥१३॥

खबर खुशी पिया की सुनूं, हरषत हिया हित मोर ।
तुलसी तलब पिय की लगी, जग तिनका अस तोर ॥१४॥

सावन ७२

सतगुरु गत मत सार है, दीन्हा अगम लखाय ।
सुरत चढ़ी सत द्वार को, लीला गिर गम पार ॥ १ ॥

नित २ सेर सँवारही, सेत श्याम के घाट ।
बाट लखी सखी संग में, चढ़ कर निरख निहार ॥ २ ॥

पिय का नूर लख थक भई, छिन छिन लौ सौ बार ।
लार २ लागी रहे, तन मन बदन बिसार ॥ ३ ॥

आदि अंत पिय पट खुले, चढ़ि महलन पर धाय ।
तिरबैनी घर घाट पै, न्हावत बिपति नसाय ॥ ४ ॥

पिया परचै जब से भई, कहिया तुलसी दास ।
बास बिधी बिधि महल की, पहुँची पति पिउ पास ॥ ५ ॥

मंगल ७३

अगम गली गम सार पार चढ़ि पेखिये ।
जहँ सतगुरु के बैन नैन नित देखिये ॥ १ ॥

चल सतगुरु के महल टहल तहँ कीजिये ।
जीवन जनम सुधार सार कर लीजिये ॥ २ ॥

सखी सुखमन घर घाट बाट पिया की लखो।
तोड़ो जम के दन्त संत सरना तको ॥ ३ ॥

पिया बिन धृग संसार जार जग जोर है।
धृग जीवन बिन दास पास पिया को कहैं । ४ ॥

सतगुरु संत दयाल जाल जम काटि हैं।
करि हैं भौ जल पार ठाट सब ठाटि हैं ॥ ५ ॥

सूरत संध सुधार पंथ पिय पाइया।
तुलसी सत मत सार सुरत गति गाइया ॥ ६ ॥

शब्द ७४

गगन धार गंगा बहै। कहैं संत सुजाना हो ॥ टेक ॥

चढ़ि सूरत सरवर गई। शशि सूर ठिकाना हो ।
बिरले गुरुमुख पाइया। जिन शब्द पिछाना हो ॥ १ ॥

प्राण पुरुष आगे चली। सोइ करत बखाना हो ॥
बिमल २ बानी उठै। अद्भुत असमाना हो ॥ २ ॥

सहस कँवल दस पार ये। मानो बुद्धि हिराना हो ॥
निर्मल वास निवास में। कर २ कोइ जाना हो ॥ ३ ॥

तुलसी तलब तलबी करे। नित सुरत निशाना हो ॥
अंड अलख लखि हैं सोई। चढ़ि कर धर ध्याना हो ॥ ४ ॥

शब्द ७५

शब्द साख भाषत भये। तन बीत सिराना हो ॥ टेक ॥

भेष पंथ भूले फिरें। कोइ मरम न जाना हो ॥
सुन्न शहर सत द्वार में। चढ़ श्रुति असमाना हो ॥ १ ॥

नभ निवास न्यारी भई। मारग पहिचाना हो ॥
पछिम पार पट खोल के। खिड़की नियराना हो ॥ २ ॥
होत जोत जगमग लखे। आतम दरसाना हो ॥
कँवल केल आगे चली। दल द्वै दिखलाना हो । ३ ॥
परमातम पद परस के। लख पुर्ष पुराना हो ॥
अगम गली आगे चली। अली आदि अनामा हो ॥ ४ ॥
तुलसीदास दुरबीन में। कोइ संत समाना हो ॥
अगम निगम गम गाय के। जिन भाष बषाना हो ॥ ५ ॥

शब्द ७६

शब्द भेद साखी लखे। सोइ साध सुजाना हो ॥ टेक ॥
अगम निगम गम चीन्ह के। बानी पहिचाना हो ॥
सुरत शिष्य शब्दा गुरू। मिल मारग जाना हो ॥ १ ॥
लख अकाश औंधा कुवाँ। तामें सुरत समाना हो ॥
गगन गिरा गरजत भई। फूटा असमाना हो ॥ २ ॥
गँग जमुन बिच सरस्वती। बेनी असनाना हो ॥
जोग ज्ञान गम ना लखे। अली अगम ठिकाना हो ॥ ३ ॥
तुलसीदास दुरबीन का। कोइ फोड़ निशाना हो ॥
सिंधु बुंद सागर मिला। सोइ सिंध कहाना हो ॥ ४ ॥

शब्द ७७

सुरत निरत निज नैन को। सतगुरु दरसावा हो ॥ टेक ॥
अति उतंग पिय पंथ को। तब मारग पावा हो ॥
सुरति जहाज़ पर बैठ कर। अपने घर आवा हो ॥ १ ॥

सज सिंगार सुन्दर चली। पिय को अपनावा हो ॥
फूलन सेज सम्हारि के। सजि पलँग बिछावा हो ॥ २ ॥
लगन लार लै से मिली। पिया रीझ रिझावा हो ॥
सुरत सुहागन साज के। पिय से लिपटावा हो ॥ ३ ॥
तुलसी तरँग रँग राह की। कुछ कहत न आवा हो ॥
पति परचै पिउ पास की। जाना जिन गावा हो ॥ ४ ॥

शब्द ७८

साधू गति गाई अगम गली।
भेष न पावै भरम छली ॥टेक॥
जस चकोर निस चंद तकत है।
सिस्त धरन धर अधर अली ॥ १ ॥
कँवल खिले रवि रथ के निरखे।
बदन बिरह जस खटक खली ॥ २ ॥
अललपक्ष जस उलट अकाशा।
सो मारग चढ़ सुरत चली ॥ ३ ॥
तुलसी तलब साध कोइ जाने।
आदि पिया पद परख पिली ॥ ४ ॥

शब्द ७९

गगन चढ़ अगम कपाट खुलै ॥टेक।
कुंजी दीन दया सतगुरु की।
सब भ्रम घाट खुले ॥ १ ॥
लोहा से कंचन कर दीना।
रतनन बाट तुलै ॥ २ ॥

पी केरी पलंग पास महलों में ।
गैबी चँवर ढुलै ॥ ३ ॥

तुलसी अचल सुहाग सुरत ने ।
पाया सत नाम दुलै ॥ ४ ॥

शब्द ८०

अधर घर सतगुरु सोध करो ।
लख सुरत धरन धरो ॥टेक॥

काया खोज करो कँवलन में ।
सो गुरु तत्त तरो ॥ १ ॥

गुर चारों पद चार ठिकाने ।
भिन्न-भिन्न बरन बरो ॥ २ ॥

पिरथम गुरु दल सहँस कँवल में ।
कंज काज सुधरो ॥ ३ ॥

गुरु दूसर गढ़ गगन सिखर पर ।
द्वै दल पद सुमिरो ॥ ४ ॥

गुरु तीसर तीसर कँवला में ।
चौदल चरन परो ॥ ५ ॥

चौथे सिंध सतलोक गुरू को ।
जाने सो जोई उबरो ॥ ६ ॥

गुरू चार पद पार परम गुर ।
सो संतन पकरो ॥ ७ ॥

सुन्न शब्द नहिं आतम आसा ।
स्वांस जोग झगरो ॥ ८ ॥

अंड ब्रहमंड से पिंड पसारा।
निरगुन गुन बिगरो ॥ ९ ॥

गुर शिष नाहिं गुरू गुरवाई।
बिन गुर भरम मरो ॥१०॥

कनफूंका गहि कंठी बांधी।
इन से जग बिगरो ॥११॥

आशा बस बंधन शिष कीन्हा।
इन हिय ज्ञान हरो ॥१२॥

पढ़ पढ़ मोट भये मन ज्ञानी।
मान मस्त मगरो ॥१३॥

सुन सतसंग नेक नहिं भावै।
बूड़ जनम अगरो ॥१४॥

मूल अजर सतगुरु बिन भूले।
नहिं पावें डगरो ॥१५॥

यह शब्दन में परख पुकारे।
यासे भौ उतरो ॥१६॥

अकथ अलोक लोक से न्यारा।
तुलसी अज अजरो ॥१७॥

शब्द ८१

सुरत मतवाली करत किलोल ॥टेक॥

पलँगा साज सजी पिउ प्यारी।
पिय रस गांठ दई सब खोल। १ ॥

गहि गहि बाँह गले बिच डाली।
धार धरन कर कीन्ह अडोल ॥ २ ॥

झमक चढ़ी हिये हेर अटारी।
न्यारी निरख सुना इक बोल ॥ ३ ॥
पछिम दिसा दिस खोल किवारी।
पिया पद परसत भइरी अमोल ॥ ४ ॥
तुलसी जगत जाल सब जारी।
डारी डगर बेदन की पोल ॥ ५ ॥

शब्द ८२

अली री अकाश सुरत सजि चाली ॥टेक॥
उड़ उड़ बिहँग चढ़त नभ नाली।
भाली भलक भयो उजियास ॥ १ ॥
दृग दीपक मंदिर उजियाली।
लाली लाल फैल चहुँ पास ॥ २ ॥
उमँगी सुरत प्रेम प्रण पाली।
माली मीन जल सींच हुलास ॥ ३ ॥
तुलसी रंग रूप रस डाली।
हाल होत हिये ब्रह्म बिलास ॥ ४ ॥

शब्द ८३

सुरत सिरोमन घाट।
गुमठ मठ मृदंग बजैं रे ॥टेक॥
किंगरी बीन संख सहनाई।
बंक नाल की बाट ॥
चित विच चाट खाट पर जागी।
सोवत कपट कपाट ॥ १ ॥

मुरली मधुर झांझ झनकारी।
रंभा नचत बैराट ॥
उड़त गुलाल ज्ञान गुन गांठी।
भर भर रँग रस माट ॥ २ ॥
गइया गैल सैल अनहद की।
उठे तान सुर ठाट ॥
लगन लगाय जाय सोइ समझे।
सुरत सैल नभ फाट ॥ ३ ॥
तुलसी निरख नैन दिन राती।
पल पल पहरों आठ ॥
यहि बिधि सैर करे निस बासर।
रोज़ तीन सै साठ ॥ ४ ॥

होली ८४

थिर न कोई यह जग में री।
सौदागर लाद चलोरी ॥टेक॥
जो कुछ माल भरो भरती में।
दुख सुख कर्म करेगी ॥
भीषम करन द्रोण दुर्योधन।
भाभी बस भर्म मरेरी ॥
राज रन खेत लड़ेरी ॥ १ ॥
येरी रावन लंका पती पै हती।
सो रती नहिं बास बसेरी ॥
पंडौ पांच गये तज देही।

सो हाड़ हिवारे गलेरी ॥
डगर जम ने घट घेरी ॥ २ ॥

जो जो देह धरें तन धारी ।
राजा रंक रचेरी ॥
को नर नारि पशु गति गावे ।
भौ सुख शोक पकेरी ॥
लखा नहिं आदि अजैरी ॥ ३ ॥

पंडित भेष भक्ति नहिं जाने ।
ज्ञान के मान भरे री ॥
सतगुरु सोध बोध बिन मारग ।
जम पुर फांस फँसेरी ॥
भली तुलसी मत फेरी । ४ ।

होली ८५

हम को जग क्या करना री ।
डुक जीवन पै मरना री ॥टेक॥

इक दिन देख बदन बिनसेगा ।
अगिन अंग जरना री ॥
यों बरबाद नसे नर देही ।
भोग उमर भर नारी ॥
दई गति से डरना री ॥ १ ॥

नारि निहार जुगन बिधि बाँधा ।
मुनि मन को हरना री ॥
जग परिवार सकल दुखदाई ।

इन सन्मुख से टरना री ॥
विपति बस क्यों पड़ना री ॥ २ ॥
काया कल्प काल नहिं छूटे ॥
नर तन में तरना री ॥
सतगुरु मूल मता जुगती से ।
गुप्त ध्यान धरना री ।
मुक्ति हिरदे चरना री ॥ ३ ॥
औसर आज विदित बनिवे की ।
संतन के सरना री ॥
जो कोइ तोल तरक तुलसी को ।
पोढ पकड़ धरना री ॥
लखो चित से नर नारी ॥ ४ ॥

बसंत ८६

घट बसंत जहँ पिया को पंथ ।
तैं कहँ खोजत अंत अंत ॥ टेक ॥
दीप नगर लख बाट चीन्ह ।
सुन्न सिखर पर सुरत लीन ॥
सतगुरु मारग अति अतंत ।
नित पहुँचे जहँ अगम संत ॥ १ ॥
कुंभ कुरम पर अधर घाट ।
विमल लोक लख पावे बाट ॥
जहं इक साहब अज अचिंत ।
वे मिल तोड़ैं जम के दंत ॥ २ ॥

आदि अँत टूटे बिषाद ।
यह कोई बूझें विरले साध ॥
चढ़ प्रयाग पद भये निचिंत ।
न्हावत निरमल सुरतवंत ॥ ३ ॥

पदम पुरुष बेनी बिलास ।
बंधन टूटे भये निरास ॥
जग दुख पावत जीव जंत ।
तुलसी निरख कहि आदि अंत ॥ ४ ॥

बसंत ८७

लख लख लखियां पिय को रूप ।
जहँ अनहद बाजे बजैं अनूप ॥टेक।

जहँ बिजली चमके अति अपार ।
गगन घोर नहिं वार पार ॥
मन मतंग जहँ सुनत भूप ।
इन्द्री संग तजि रहे है चूप ॥ १ ॥

मान सरोबर हँस घाट ।
लै चढ़ लागी अगम बाट ॥
अर्ध उर्ध मुख औंध कूप ।
चंद सूर नहिं छाँह धूप ॥ २ ॥

सूरत सुन सतगुरु के बैन ।
निरखत हरषी हिय के नैन ॥
अधर पंथ इक गली है गूप ।
जहाँ इक साहब अति अनूप ॥ ३ ॥

कोटि भान छबि रोम तेज।
तीन लोक कोइ परै न पैज॥
तुलसी निरख नित अज अरूप।
चढ़ी सुरत गई पछिम पोहप॥ ४॥

ठुमरी ८८

झँझरी पिया झाँक निहारी।
सखी सतगुरु की बलिहारी॥ १॥
दीना दृग सुरत सम्हारी।
पद चीन्हा पुरूष अपारी॥ २॥
चली गगन गुफा नभ न्यारी।
जहँ चाँद न सुरज सिहारी॥ ३॥
तुलसी पिया सेज सँवारी।
पौढ़ी पलंगा सुख भारी॥ ४॥

ठुमरी ८९

सुन संत गती अति भारी।
अली जोग जुगत से न्यारी॥ १॥
जहँ शब्द न सुन्न अकारी।
सुन सुन्न महासुन पारी॥ २॥
नहिं गुन निरगुन मत झारी।
सत नाम पिया पद पारी॥ ३॥
तुलसी निज नाम निहारी।
जहँ आदि अनाम अपारी॥ ४॥

बिहाग ९०

अलीरी गुरु गैल लखाई।
अलख पलक पर पाई ॥टेक॥

दृग दुरबीन चीन्ह जब पाई।
हरदम सुरत लगाई ॥ १ ॥

लीला सिखर निकर नभ न्यारी।
छिन-छिन सुरत समाई ॥ २ ॥

पश्चिम द्वार पार पट खोले।
अगम निगम गम पाई ॥ ३ ॥

तुलसी तत्त तरक तन माहीं।
अस आतम दरसाई ॥ ४ ॥

बिहाग ९१

अली री आगे खोज लगाई।
चढ़ सुत गगन समाई ॥टेक॥

मकर तार मारग लख पावा।
ता बिच धधक चढ़ाई ॥ १ ॥

मानसरोवर निरख निहारी।
बेनी में पैठ अन्हाई ॥ २ ॥

भीतर भिन्न चिन्ह भई न्यारी।
कोटि भान छबि छाई ॥ ३ ॥

ता मधि बीच द्वार इक दरसा।
साहब सिंध कहाई ॥ ४ ॥

तुलसी सुरत शब्द सुन माहीं।
गुर पद सुरत मिलाई ॥ ५ ॥

शब्द नसीहत नामा ६२

एरी आली खोज खबर धस धाई ॥टेक॥

गवन भवन भिन भेद लखाऊँ।
सत मत जोत नाद नहिं जाई॥
अलख जोत बिन खलक समाना।
जाना जिन जिन गाई॥ १॥

नाम निवास बास सतलोका।
जेहि का कँवल तेज सुन माहीं॥
परमातम पद सुन परे धामा।
सुन धुन आतम आई॥ २॥

आतम बास बसे सरवर में।
वहि तत वास अकाश कहाई॥
अली अकाश चारों तत कीन्हा।
तत बैराट बनाई॥ ३॥

सुन नभ वार तार सुर्त श्यामा।
ता में आतम मनहिं कहाई॥
पच इन्द्री कर्म ज्ञान पाँच में।
दस बस फाँस फँसाई॥ ४॥

इन्द्री कर्म अशुभ बस बाँधे।
शुभ करके गति ज्ञान गिराई॥
शुभ और अशुभ कर्म मन मारग।
यह दोउ भौ भुगताई॥ ५॥

आसा बास बसे करमन में।
फिर फिर जन्म जोन भरमाई॥

यहि विधि आवागवन भवन में।
फिर फिर खान समाई ॥ ६ ॥

यहि विधि संत सभी सब गावें।
शब्द साख सब वर्ण सुनाई ॥
बूझै न मूढ़ चलै मन मत के।
सत सत बचन उड़ाई ॥ ७ ॥

आतम ज्ञान ब्रह्म बन बैठे।
कहते लाज न मन बिच आई ॥
द्वैत भाव भर्म मन वरतै।
अद्वैती दरसाई ॥ ८ ॥

तज मन मूढ़ कूर पाखंड को।
झूंठ झूंठ सब धोखा खाई ॥
तन कर नाश बास चौरासी।
फिर फिर जम धर खाई ॥ ९ ॥

या से मान मनी मति डारो।
लख गुरु गगन गवन बतलाई ॥
सूरत डोर लील बिच खेले।
फोड़ के पछिम समाई ॥१०॥

लीला सेत श्याम सुन पारा।
न्यारा द्वार दीदा सरसाई ॥
जहँ परमातम आतम नाहीं।
खिड़की पुरुष लखाई ॥११॥

जहँ सतलोक मोष पर बेनी।
मंजन करके सहज अन्हाई ॥

चढ़ कर द्वार देख सत साहब।
शुभ और अशुभ नसाई ॥१२॥

जे जे बंद फंद करमन के।
सत्तपुरुष दरसत नस जाई॥

यहि बिधि भांति सुरत से खेले।
सतगुरु कहत बुझाई ॥१३॥

सतसंग रंग दीन दिल पावे।
मोटे मन तन बूझ न आई॥

जिन मन नीच कीच सम कीन्हा।
उनकी दृष्टि समाई ॥१४॥

जोगी भेष भर्म मन ज्ञानी।
परम हंस बैराग गुसाईं॥

कर कर खोज रोज पच हारे।
वा की खबर न पाई ॥१५॥

शास्त्र संग विधि साखि बिचारे।
विधि वेदान्त ब्रह्म बतलाई॥

वेद नेति कर कहत पुकारी।
ब्रह्मा आप हिराई ॥१६॥

बिधि बैराट कँवल नाभी में।
खोजत खोजत फिरि फिरि आई॥

ब्रह्मा भूल वेद कह नेता।
यह दोउ भेद न पाई ॥१७॥

यह बेदान्त ब्रह्म कस गावे।
या को कहु किन बूझ बताई॥

या के गुरु का भेद बताओ।
बिनु गुरु कहु कस गाई ॥१८॥

प्रथमे बन बैराट बनावा।
ता पीछे ब्रह्मा उपजाई॥
ब्रह्मा पीछे बेद बिधाना।
यह सब खोज न पाई ॥१९॥

वेद विधी से शास्तर कीन्हा।
ता पीछे वेदान्त बनाई॥
यह तौ ब्रह्म ब्रह्म कहि गावैं।
वा ने नेत सुनाई ॥२०॥

या की साख समझ नहिं आवे।
झूंठ साँच निरनै न बुझाई॥
सोल पोल विधि कोइ न विचारे।
टेकै टेक चलाई ॥२१॥

ब्रह्मा बाप बैराट कहावै।
जा में आतम ब्रह्म समाई॥
सूर चंद दोउ नैना वाके।
राहु विमान सताई ॥२२॥

ब्रह्मा बाप आप भयौ रोगी।
भोग रोग नित राह सताई॥
उनका बाप आप दुख पावै।
ता का दुख न छुड़ाई ॥२३॥

वेद भेद संग जगत उबारे।
अस अस पंडित कहत सुनाई॥

पीछे शास्तर नाती कहिये।
आजा दुर्ग दुख पाई ॥२४॥

जग बेदान्त ब्रह्म कहै ज्ञानी।
राहु बैराट ब्रह्म दुखदाई ॥
पंडित बूझ सूझ समझाओ।
यह कहु समझ सुनाई ॥२५॥

तन को तेल फुलेल रसिक में।
खान पान पोशाक सुहाई ॥
नित नित सैल करै बाग़न में ॥
तन नित माँझ अन्हाई ॥२६॥

यह सब मौज चौज सुख संगा।
तन हबूब बुल्ले सम जाई ॥
पल पल घट घड़ियाल पुकारे।
जग जम सोंटे खाई ॥२७॥

लेत हिसाब जवाब नहिं आवै।
आतम ज्ञान गैल गिर जाई ॥
ब्रह्म बूझ बैराट दुखारी।
परलै माहिं नसाई ॥२८॥

ता के भीतर चेतन बासी।
परलै तन तत कहाँ रहाई ॥
ब्रह्मा नाश और वेद नसाना।
जब का भेद सुनाई ॥२९॥

प्रथम पवन आकाश नसाना।
ब्रह्मा बेद बैराट नसाई ॥

कागज़ स्याही न लिखने हारा ।
तब की बिधि समझाई ॥३०॥
बिधि बैराट नाश सब जावैं ।
आगे भेद न कहत सुनाई ॥
जेहि जेहि पूछौं सोइ अस गावै ।
आगे न खबर सुनाई ॥३१॥
काल जाल सब चाल बखाने ।
बेद नेति शास्तर समझाई ॥
या में जोग ज्ञान फँस मारे ।
सब को भरम भुलाई ॥३२॥
अगम निगम पर नेक न पावै ।
बेद नेत आतम कह गाई ॥
सोइ शास्तर सुन मुनि जन गावैं ।
आगे भेद न पाई ॥३३॥
आतम ब्रह्म अबाच बतावैं ।
कहत दृष्टि नहिं देत दिखाई ॥
बिन देखे बर्णन जिन कीन्हा ।
नहिं परमाण कहाई ॥३४॥
कहत बेद कोइ देख न पावै ।
पुनि अबाच कहु कौन सुनाई ॥
बिन बाचा शास्तर नहिं भयऊ ।
अरी अबाच किन गाई ॥३५॥
वह अबाच कहु बोलत नाहीं ।
बाचा बिन किन खबर सुनाई ॥

सुन कहु बेद नाद बाचा से।
या को भेद बताई ॥३६॥
पूछौ जित जो अबाच बतावै।
बाचा में बरतंत सुनाई॥
बाचा बचन न जाने पावै।
पूछौ कहौ सुनाई ॥३७॥
बाक बचन कहौ बात न मानै।
बिन बाचा में कहौ समझाई॥
सुन द्वैत बिन बाच न आवै।
बानी बिन दरसाई ॥३८॥
यह सब काल जाल जग बाँधा।
ज्ञानी पंडित भेष भुलाई॥
मान मनी मद अहँ बतावैं।
यहि बिधि जाल जमाई ॥३९॥
पढ़ पंडित रुज़गार चलावा।
कुटुमब काज परपंच बसाई॥
ता में ज्ञानी जगत अबूझा।
सो सुन समझ सुनाई ॥४०॥
यहि बिधि बुधि बेदन संग बाँधी।
संत मता बेदन सम गाई॥
नाद बेद से संत निनारे।
सो नहिं कोइ गति पाई ॥४१॥
यह अबाच पर और अबाचा।
सो कोइ संत भेद बतलाइ॥

उन देखा सुर्त से चढ़ चौथे।
सो सब संत सुनाई ॥४२॥
प्रथमे एक अनाम अबाचा।
वा की गत मत संत जनाई ॥

सत्त लोक पर नाम अबाचा।
सो पद चौथे माहीं ॥४३॥
परमातम पद सुन पै अबाचा।
सुन धुन नीचे आतम आई ॥
मानसरोवर तेहि कर धामा।
सोई अकाश समाई ॥४४॥

जड़ अकाश चेतन जिन कीन्हा।
श्याम सेत बिच नाम गुसांई ॥
सोइ निज नाम निरंजन भाखा।
वेद अबाच सुनाई ॥४५॥

सहस कँबल मध धाम कहावे।
ता पर तीन अबाच रहाई ॥
ब्रह्मा बेद बैराट न पावै।
ऋषि मुनि भरमन माहीं। ४६॥

शास्तर मिल पुनि आतम गावा।
काल की कला अबाच सुनाई ॥
पंडित पढ़ गुन ज्ञान गठाने।
या से जग बौराइ ॥४७॥

बिन गुरु कंज राह नहिं पावै।
संत सुरत से नित नित जाइ ॥

जो वहि देस भेस के भेदी।
जिन जिन खबर जनाई ॥४८॥

उनको जग नास्तिक ठहरावे।
बोल बचन उनके न सुहाई॥

वे पुनि चढ़ २ अगम निहारें।
बिधि सब कहत सुनाई ॥४९॥

काल निरंजन वाच अवाचा।
कहत नाद विच वेद बनाई॥

आतम तमा अवाच कहावै।
येहि बिधि काल जनाई ॥५०॥

संत मता कुछ और पुकारे।
आतम जीव मानसर माहीं।

परमातम सुन खिड़की पारा।
संतन देख जनाई ॥५१॥

आगे सत्तलोक चौथे में।
सो अवाच सतपुरुष कहाई॥

जहँ नहिं निरगुन वेद विचारा।
यह सब वार रहाई ॥५२॥

चौथे पार अनाम अमाया।
नाम न रूप अगम गति गाई॥

सो सब संत करैं दरबारा।
यह गति बिरले पाई ॥५३॥

यह गति धाम अगम पुर ठामा।
जाहि देत जो जाय जनाई॥

या की साख बेद नहिं जाने।
संत कृपा से पाई ॥५४॥

संत सरन बिन पंथ न पावै।
सतगुरु गैल खेल खुल गाई॥
मन होय छोट मोट छल छांड़े।
तब सत सुरत लखाई ॥५५॥

सत मत रीत जीत जब जाने।
ज्ञान मान मद दूर बहाई॥
मन और कर्म बचन बुधि साँची।
काची कुबुधि उठाई ॥५६॥

संत दयाल चाल जब चीन्हें।
लीन दीन दिल लेत लगाई॥
सब अस भाँत जात पक परखे।
तरके तन बिच जाई ॥५७॥

वे अंदर घट घाट विचारें।
कर कर फ़ेल गैल नहिं पाई॥
क्रूर कपट सब झाड़ निकारे।
जब रस राह लखाई ॥५८॥

सतमत सुरत निरत नित न्यारी।
सारी समझ बूझ बतलाई॥
नील सिखर पट परदे माहीं।
षल पल मनहिं लगाई ॥५९॥

काग भसुंड धाम धस पावै।
कँवल कंज करिया के मांही॥

ता पर सेत सुरत सत द्वारा।
चढ़ चढ़ सुन्न समाई ॥६०॥

सुन धुन ताल तरँग आतम जिव।
पछिम दिसा दिस देत दिखाई॥
खिड़की खोल अबोल अवाचा।
सो रचि जीव जनाई।६१॥

ताल निहार पार चलि आगे।
सुन्न सिखर फाटक में जाई॥
तहँ कहुँ ताक भाष दोउ द्वारा।
पारब्रह्म पद पाई ॥६२॥

सुरत सैल जहँ खेल निहारी।
लख लख गगना अंड अथाई॥
जा विच सुरत सरोमन पेली।
ज्यों चींटी सम जाई ॥६३॥

अस भसुंड भिन अंड निहारा।
राम रमा मुख जाय समाई॥
रामायण लख साख सुनाऊँ।
हिये दृग देत दिखाई ॥६४॥

चर और अचर खान सब सारी।
भिन भिन भेद भसुंड सुनाई॥
काग भसुंड काया के माहीं।
लख निज जान जनाई ॥६५॥
या से परख पार पद न्यारा।
पारे चले चढ़ चशम चिन्हाई॥

सुन धुन आतम पद परमातम ।
इनके पार लखाई ॥६६॥

यह दोउ वार पार सतलोका ।
परदा तीन फोड़ जोइ जाई ॥
सूरत शब्द पुरुष पद पारा ।
जब घर अपने आई ॥६७॥

तापर धाम नाम नहिं न्यारा ।
तारा चन्द न सुरज रहाई ॥
धरती न गगन गिरा नहिं बानो ।
जानी जिन जिन गाई ॥६८॥

पिंड ब्रहमंड न अंड अकारा ।
न्यारा अली अलोक कहाई ॥
जहँ सब संत पंथ पद माहीं ।
नित नित सेल समाई ॥६९॥

सतगुरु साख हाथ हित पावे ।
संत सरन सुत सार लखाई ॥
सतसंग संत बिना नहिं पावे ।
फिर फिर करमन माहीं ॥७०॥

आगे सुन गुन ज्ञान बताऊँ ।
जीव कर्म बस ब्रह्म बँधाई ॥
ब्रह्म जीव बस कर्म बिचारे ।
जड़ संग ज्ञान गिनाई ॥७१॥

अब या की सुन साख सुनाऊँ ।
भागवत मत बिध ब्यास बताई ॥

जब बैराट ठाट ब्रह्म भइया ।
देवन जाय उठाई ॥७२॥

नहिं बैराट उठा बिन आतम ।
पुरुष अंश आतम जब आई ॥
मधि बैराट जीव आतम अस ।
तब तन तुर्त उठाई ॥७३॥

अंस जीव आतम कहु कहँ से ।
आया सो बिधि खोज कराई ॥
सो स्वामी का कहु कहँ बासा ।
जिन से अंश जो आई ॥७४॥

अंश बुंद आतम तन बासा ।
सिंध खोज कहुँ अंत रहाई ।
यहि बिन संत पंथ नहिं पावै ।
फिर फिर जड़ तन माहीं ॥७५॥

बिन साखी संध फंद नहिं टूटै ।
छूटै न ज्ञान जो कोटि कराई ॥
बिन बिधि सुरत संध नहिं पावै ।
बिन सिंध बुंद बहाई ॥७६॥

चेतन जड़ तन गांठ बँधानी ।
छूटै बिन बस ब्रह्म न भाई ॥
छूटै गाँठ गगन चढ़ चीन्हें ।
तब बिधि ब्रह्म कहाई ॥७७॥

जैसे गगन रवी रहे बासा ।
किरन भास भूमी पर आई ॥

जब सब सिमट भास गति रवि में ।
बुंदा सिंध कहाई ॥७८॥

नाश अकाश सूर शशि बिनसे ।
तब रवि रहे कहो कहँ जाई ॥
सो ठेके का खोज लगाओ ।
वो पद कौने ठांई ॥७९॥

शास्तर ने गति गैल भुलाई ।
ब्रह्म बाँध जड़ जीव रहाई ॥
यहि बिधि भूल फूल मन मारग ।
या से गति नहिं पाई ॥८०॥

ज्ञान ठान दृढ़ शास्तर भाखा ।
परमहंस ज्ञानी उरझाई ॥
चार अवस्था भाख बताई ।
सो सब कहत सुनाई ॥८१॥

सब ज्ञानी तुरिया गति गावैं ।
पूँछौ भेद सो मनमुख माहीं ॥
जाग्रत स्वप्न सुषूपति तुरिया ।
तुरियातीत सुनाई ॥८२॥

जाग्रत स्वप्न का भेद न बूझैं ।
सुखपति तुरिया मुख से गाई ॥
तुरियातीत रीति मन मारग ।
आगे भेद न पाई ॥८३॥

बानी चार लार कहि बोलें ।
परा पसंती मधमा भाई ॥

बैखरी बिधि बोलें सब बोली।
कँवल पेट के माहीं ॥८४॥

यहाँ से बानी उठत बतावैं।
बिष्ठा बास बतावत आई॥
जहँ से बानी उठत अवाज़ा।
वहँ का खोज न पाई ॥८५॥

ज्ञान तीन गति गाय सुनावैं।
रेचक पूरक कुंभ कहाई॥
यह सब ज्ञानी बानी बूझैं।
मन संग बुद्धि बहाई ॥८६॥

मन बिधि ज्ञान बुद्धि बस देखे।
ब्रह्म ब्रह्म कर कहत सुनाई॥
आतम को अद्वैत बतावैं।
या से बूझ न आई ॥८७॥

आतम कुबुधि बंध करमन में।
ब्रह्म ज्ञान गति कहत बुझाई॥
रहे अज्ञान बास जड़ देही।
ता बिच गांठ बँधाई ॥८८॥

ठटकर टाट ठटे जब सूरत।
अंडा फोड़ अगम गति पाई॥
शब्द सिंध सूरत चढ़ जावै।
जब पावै पद आई ॥८९॥
तुलसी तुच्छ कुच्छ नहिं जाने।
संत पंथ कहि कहत सुनाई॥

मैं मति नीच कीच सम किंकर ।
सतसँग समझ सुनाई ॥९०॥

होली ९३

आली आन लखाई गुरु ने अगम आदि री ।
सखी सत मत सूरत गगन नाद री ॥टेक॥
पिउ को निरख पद परख पुकारी ।
संत बिना नहिं लगत दादरी ॥ १ ॥
सुन्न महल पर धुन धधकारी ।
प्यारी पकड़ लख सुगम साधरी ॥ २ ॥
रूप रेख बिन देख निशानी ।
रोम एक रवि कोटि बादरी ॥ ३ ॥
तुलसी चरन धूर सतगुरु की ।
लै लख धुर की कही अनाद री ॥ ४ ॥

होली ९४

कोई पूछोरी जा सतगुरु से ।
बाल तरुन बिरधापन बीता ॥
प्रीत करी सोइ रीत रखी नहिं धुर से ॥टेक॥

जोग ज्ञान वैराग विरह नहिं ।
घटत स्वाँस नित सुर से ॥ १ ॥
बीतत बदन विषय रस माहीं ।
भेंट नहीं पिया पुर से ॥ २ ॥
हिय में हिलोर पिया बिन प्यारी ।
उठत अगिन जिय झुरसे ॥ ३ ॥

तुलसी ताप तपै दिक माहीं ।
मरत दवा बिन ज्वर से ॥ ४ ॥

प्रभाती ६५

सतगुरु बिन ज्ञान, गई खान में जहाना ॥टेक॥
तीरथ और बरत न्हात, फिरत है ज़माना ।
कच्छ मच्छ जल जनम, आठ पहर का अन्हाना ॥ १ ॥
शास्तर नर सार, सो व्योहार हू न जाना ।
आतम तम रूप भूप भवन में समाना ॥ २ ॥
ब्रह्मा बैराट नाभ, कँवल है पुराना ।
सोई बैराट मनुष, देह को बखाना ॥ ३ ॥
अगिन और अकाश पवन, बास में बंधाना ।
जल थल तत पांच, तीन गुनन में रहाना ॥ ४ ॥
उतपति बरबाद की, उपाधि को न जाना ।
खोजे बिन साध, आदि अंत को भुलाना ॥ ५ ॥
नर हर वेदान्त ब्रह्म, देत हैं लखाना ।
तुलसी तत मूल छाँड़, पूजते पषाना ॥ ६ ॥

शब्द ६६

एरी आली अपने में देखो आप ॥टेक॥
तैं जपने में सखी जनम बिसेखा ।
लेखा सुपन विलाप ॥ १ ॥
तप तपना नहिं जोग समाधा ।
साधोरी सूरत साफ़ ॥ २ ॥

दै दुरबीन चीन दरबारा ।
धारा गंग मिलाप ॥ ३ ॥

गगन गुहा तुलसी अली ऐजै ।
खैंचे धनुवाँ चाप ॥ ४ ॥

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

निर्णय और भेद संत मत का

सम्वाद महाराज तुलसी साहब का साथ फूलदास साधू कबीर पंथी के

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

फूलदास जब बचन बषाना । सत्त कबीर पंथ अस जाना ॥
फूलैदास महंत अस नामा । काशी कबीर चौरा अस्थाना ॥
महिमा सुनि पुनि हमहूँ आये । दरश कीन सुख मन उपजाये ॥
फूलदास तब बचन उचारा । गुरू पंथ बिधि कहौ बिचारा ॥
को है गुरू पंथ को कहिये । कौन मते के साधू कहिये ॥

तुलसीदास उबाच

॥ चौपाई ॥

संत गुरू और पंथ न जाना । यहि जेहि संत पंथ हित माना ॥
दूजा इष्ट न जानौं कोई । संत सरन नित सुरति समोई ॥

फूलदास उबाच

॥ चौपाई ॥

संतगुरू बिन पंथ न होई । अपना गुरु मत भाषौ सोई ॥
सतगुरु बिना ज्ञान नहिं आवै । सतगुरु बिना भेद नहिं पावै ॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

कहो कैसे गुरु भेद लखावैं । कौन राह से पंथ बतावैं ॥
ताकी विधि कहौ तुम साखी । सो किरपाल दया करि भाखी ॥
हम अजान कुछ मर्म न जाना । तुम हौ साधू परम निधाना ॥
तुमको कस सतगुरु दरसावा । भाखि भेद सोइ मोहिं सुनावा ॥
मैं अति दीन दया कर दीजै । दीनदयाल भेद पुनि दीजै ॥

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

तुलसीदास सुनो चित लाई । पंथ भेद मैं कहूँ सुनाई ॥
सत्त पुरुष रहे पोहप मंझारा । सम्पुट कँवल खुले तेहि बारा ॥
सत्त पुरुष तेहि बचन उचारा । ज्ञानी बेगि जाव संसारा ॥
काल देत जीवन को त्रासा । संत कबीर काटो जम फांसा ॥
प्रथमे चले जीव के काजा । सतजुग चले पास धर्मराजा ॥
धर्म देख उन बोले बानी । जोग जीत कित कीन पयानी ॥
तब कबीर अस कही पुकारी । जीव काज मैं जगत सिधारी ॥
सत्त पुरुष अस कहा बुझाई । जग में जाय जीव मुक्ताई ॥
धरमराय अस बचन सुनाई । तुम भौसिंध बिगारन चाही ॥
तब कबीर बोले अस बाता । तुम्हरी करहुँ प्रान की घाता ॥
पुरुष बचन अब देहौ टारी । तौ हम तुम को देहिं निकारी ॥
मन में सोच धरम सकुचाना । तब कबीर जग कीन पयाना ॥
सतजुग नाम मुनिंद्र धरावा । चौका कर जीव लोक पठावा ॥
चौका कर परवाना पावै । छूटै जीव मुक्ति को जावै ॥

और त्रेता जुग कीन्हा चौका । जीव मिले जो किये बिशोका ॥
द्वापर युग की कहूँ बखानी । धुंधल सुपच खेवसरी जानी ॥
मुक्ति लोक जीव किये पयाना । अस अस जीव मुक्ति को जाना ॥
चौका कर परवाना पावा । नरियर मोड़ तिनका तुड़वावा ॥
कलजुग नाम कबीर कहाये । पुरइन सेत पान पर आये ॥
काशी नगर कीन कर काया । नूरा नीमा के घर आया ॥
बालक जान चीन्ह नहिं पाये । कई दिवस अस बीत सिराये ॥
एक दिबस धर्मदास चितावा । चौका कर परवाना पावा ॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

भर्म एक मोरे उपजाई । चौका विधी कहो समझाई ॥
चौका कीन दीन परवाना । सो बिधि मोसों कहो बखाना ॥
धरमदास जब चौका कीन्हा । जस कबीर वाको कहि दीन्हा ॥
सो बिधि मोको बरन सुनाओ । दया भाव यह बिधि दरसाओ ॥

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

तुलसीदास सुनो तुम काना ।
चौके का मैं कहौं बिधाना ॥

॥ छन्द ॥

निज भाव आरत सुनौ खेवसरि । तोहि कहौं समझाय के ॥ १ ॥
मिष्टान पान कपूर केला । अष्ट मेवा लाय के ॥ २ ॥
पांच बासन सेत बस्तर । कजली पत्र अछेदना ॥ ३ ॥
नारियल और पोहप सेतहि । सेत चौका चांदना ॥ ४ ॥

॥ सोरठा ॥

और आरत अनुमान, सब विधि आनो साज तुम ।
पूंगीफल परमान, शब्द अंग चौका करौ ॥

॥ चौपाई ॥

और वस्तु आनौ सुठ पावन । गउ घृत और सेत सोहावन ॥
ऐसे शिष्य सिषापन मानैं । ततखन सब विस्तार जो आनैं ॥
सेत चदरवा दीन्हों तानी । आरत कीन जुगत बिधि ठानी ॥
चौका पर बैठक जब लयऊ । भजन अखंड शब्द धुन भयऊ ॥
पांच शब्द का दल जब फेरा । पुरुष नाम लीन्हा तेहि बेरा ॥
नरियर मोड़त बास उड़ाई । सत्तपुरुष को जाय जनाई ॥
छिन में पुरुष परस पद आये । सकल सभा उठ आरत लाये ॥
पुनि आरत विधि दीन मँडाई । तिनका तोड़ा जल अचवाई ॥
सोइ सिष हाथ दीन जब पाना । पावे पान सोइ लोक पयाना ॥
शब्द अंग दीन्हो समझाई । शिष्य बूझ के सुरत लगाई ॥
पहुँचै लोक अगम के द्वारा । चौका बिधी कबीर पुकारा ॥
यह विधि जीव करे जो चौका । जाका मिट गया संशय शोका ॥

तुलसीदास उबाच

॥ चौपाई ॥

तुलसिदास मन में मुसक्यानी ।
मौन रहे कुछ कही न बानी ॥

फूलदास उबाच

॥ चौपाई ॥

फूलदास विधि कहै सुनाई । कहौ तुलसी कह[illegible] आई ॥

कहै तुलसी नहिं बूझ बयाना । फूलदास मन में रिसियाना ॥
तुलसी रीस ताहि पहिचानी । दीन होय जोड़े जुग पानी ॥
फूलदास अस कहै बिचारी । तुलसी कैसे मौन सम्हारी ॥
चौका कबीर भाखि बतलावा । तुम्हरे मन कुछ एक न आवा ॥
सत्त कबीर जो बिधि बताई । सो हम तुमको भाखि सुनाई ॥

तुलसीदास उवाच

कहि कबीर जो चौका गावै । सो बिधि कहौ तौ मन में आवै ॥
दास कबीर जो कही बखाना । सो बिधि चौका है परमाना ॥
बाका भेद बिधी बिधि गावै । तब तुलसी के मन में आवै ॥
उन पुनि चौका कौन बतावा । तुम ने कौन बिधी ठहरावा ॥
नरियर उन पुनि कौन बतावा । मोड़े तास जो बास उड़ावा ॥
तुम बज़ार से नरियर लावा । ताकी बिधि तुम हमैं सुनावा ॥
जो कबीर नरियर फ़रमावा । सो तौ तुम्हरी बूझ न आवा ॥
सिलपिली दीप से नरियर लाये । ताके पांच फूल बतलाये ॥
पांच फूल का नरियर होई । ताका भेद बताओ सोई ॥
सिलपिली दीप से नरियन आवा । ताके पाँच फूल बतलावा ॥
वे ही दीप जलखंडी राजा । ता से आना नरियर साजा ॥
सो नरियर का भेद बतावै । तब तुलसी के मन में आवै ॥
नरियर बास उड़ाव न जानो । ताकी विधि तन भीतर मानो ॥
जो जो मुख से संतन भाखा । सो काया के भीतर राखा ॥
पिंड ब्रहमंड दोऊ हैं एका । ह्वै है नरियर पिंड विवेका ॥
ताकी विधी भेद दरसाओ । सो बिधि हमको भाख सुनाओ ॥
पान परवाना भाखा लेखा । ता का मन में उठे विसेखा ॥

बेचे बरई पान बतावा । सो परवाना मन नहिं आवा ॥
अम्बू सागर देखो जाई । नरियर पान की बिधी बताई ॥
चौदह हाथ पान बतलावा । सो कबीर अपने मुख गावा ॥
चौदह हाथ पान बतलाओ । सो परवाना भाख सुनाओ ॥
वह भी काया में कहुँ होई । संत कृपा से पावै सोई ॥
अठ मेवा तुम भाख सुनावा । छुवारा दाख बदाम मँगावा ॥
यह हमरे मन में नहिं आवै । कही कबीर सो भाख सुनावै ॥
कबीर बिधी अठमेवा भाखी । पुरुष आठ मेवा कहौ साखी ॥
और कपूर उन भाखि सुनावा । तुम दुकान बनिये से लावा ॥
वह कपूर काया के माहीं । ताकी विधि कोई संत बताई ॥
गऊ घिर्त जो भाखि बतावा । सो तुम दही दूध मथ लावा ॥
सो कबीर विधि और बताया । गो इन्द्री का घिर्त कहाया ॥
कजली पत्र कहा उन गाई । काया में आदृष्ठ दिखाई ॥
कजली पत्र छेदन बतालावा । काटि पेड़ तुम खंभ गड़ावा ॥
कजली छेदन कौन बखाना । तुम ता की विधि नहिं पहिचाना ।
बासन पाँच कबीर बतावा । तुम ताँबा पीतल मँगवावा ॥
पाँचौ बासन काया माहीं । करता ठठेरे आप बनाई ॥
सो बासन का कहौ बिचारा । तब जिव उतरै भव जल पारा ॥
तुम जो बस्तर सेत सुनावा । धोआ कपड़ा आन मँगावा ॥
बस्तर सेत कबीर बखाना । सो विधि तुमने नहिं पहिचाना ॥
संत सरन सेवा चित लैहौ । साध कोई बिरले से पैहौ ॥
पूंगी फल उन भाख सुपारी । ताका मर्म न जान बिचारी ॥
निकरै पवन सुपारी माहीं । सो फल पूंगी चौका गाई ॥
पवन सुपारी संतन पासा । दीन होय पावै निज दासा ॥

पाँच शब्द चौका उन भाषा । भिन २ भेद बताओ ताका ।
एक शब्द काया के माहीं । और चार का भेद बताई ॥
चार चार विधि कौन ठिकाना । न्यारे न्यारे कहौ मकाना ॥
न्यारी २ विधि बतलइया । पाँचों शब्द कबीर सुनइया ॥
चौका कौन शब्द धुन गाजा । कहौ वह शब्द केहि ठाम विराजा ॥
और चार की विधी बतावै । तब तुलसी के मन में आवै ॥
[illegible] दीन तनाई । सो कबीर ने कहा बताई ॥
[illegible] रवा कीन्हा । कहि कबीर सो बिधि नहिं चीन्हा ।
[illegible] ज बतलाई । सूरत रित रत मरम न पाई ॥
[illegible] त माहीं । सो कबीर ने भाखि सुनाई ॥
[illegible] राह रीति नहिं चीन्हा ॥
[illegible] द अखण्डित गाजा ॥

नरियर मोड़े अनेका । उमर गई पुनि पुरुष न देखा ॥
...का कर परवाना लीन्हा । तन बीता पुनि पुरुष न चीन्हा ।
मिलन कबीर आज बतलावा । पूछे कोइ नहिं भेद बतावा ॥
कहा कबीर जीवत कर लेखा । तन बीता सुपने नहिं देखा ॥
परवाना सतलोक पठावै । जीवत मिले न मुये कोइ पावै
कहि कबीर छिन लोकै जाई । सो परवाना मे...
सत कबीर परवाना भाषी । सो तुम्हरी सुभ...
तिनका तड़ो के जल अचवाइ । यह विधि तुम...
तिनका तुरन कबीर न गावा । तिनका कौ...
सिषके हाथ पान पुनि दीन्हा । कौन पा...
चौदह हाथ पान बत...
...मो लो...

ठिकान कीन्हा । ताके

कहि कबीर चौका सोइ साजा । जहँवा शब्द

चौका माहिं शब्द तुम गाई । स्वांस थके खण्डित

आठ पहर चौसठि घड़ि गाजा । या विधि शब्द अखंडित साजा ॥

ता चौके का करो बखाना । सो कबीर मुख आप बखाना ॥

कहि कबीर सोइ विधि हेरे । पाँच शब्द के दल को फेरे ॥

सो दल कौन शब्द केहि ठामा । याकी विधि भिन भाखि बखाना ॥

कौन ठिकान पाँच दल फेरा । पुरुष नाम केहि ठेके हेरा ॥

नरियर मोड़त बास उड़ाई । सो नरियर मोड़ा केहि ठांई ॥

नरियर बनिये हाट मँगावा । सो नरियर मन में नहिं आवा ॥

नरियर मोड़त बास उड़ानी । सो कहो बातें ठोक ठिकानी ॥

नरियर मोड़त बास उड़ाई । तुरत पुरुष के दरशन पाई ॥

सो ततवर कहो पुरुष दिखाना । सो ठीके का करो बयाना ॥

नरियर ऐसा कबीर बतावैं । मोड़त छिन पद पुरुष दिखावैं ।

ई ॥

॥

॥

॥

।

ाई ॥

नहीं पंथ को पावा ।

ाइ है भाई । गये कबीर जेहि मारग जाई ॥

यह नहिं पंथ कहावै भाई । चेला कर सिष राह चलाई ॥

यह सब जात पाँत कर लेखा । या से गुरु सिष तरत न देखा ॥

अब कबीर की साख सुनाई । जो कबीर अपने मुख गाई ॥

पुरइन सेत पान कियौ चौका । चीन्हौ पुरइन छांड़ो धोखा ॥

पुरइन सेत का खोज लगाओ । ढूँढ़ ताहि पर चौका लाओ ॥

तुम धरती पर चौका ठाना । पुरइन सेत कबीर बखाना ॥

यह तौ विधि मिली नहिं भाई । कही और तुम और चलाई ।

यह तुम बनिये हाट लगावा । कहा कबीर सो मर्म न पावा ।

जौ कबीर ने विधी बताई। शब्द राह मारग समझाई ॥
शब्द चीन्ह कर बूझ विचारा। केहि विधि शब्द कहैं निरवारा ॥
जाको कहिये साध सुजाना। शब्द चीन्ह सोइ बूझै ज्ञाना ॥
सोई साध विवेकी होई। कहा कबीर पद बूझै सोई ॥
शब्द पंथ सब राह बतावैं। भिन्न भिन्न विधि विधि दरसावे ॥
कोऊ न बूझै सुरत लगाई। चौका पट्टा औरहि गाई ॥
सब कहि भिन्न भिन्न दरसाई। कोइ पंथिन की दृष्टि न आई ॥
पंथ और मग औरे जाई। कहि कबीर सो राह न पाई ॥
अब कबीर मुख शब्द सुनाऊँ। फूलदास सुन मन में लाऊँ ॥
चौका राह पंथ दरसाऊँ। कहि कबीर मुख शब्द सुनाऊँ ॥
तुलसी शब्द कबीर सुनाई। फूलदास सुन सुरत लगाई ॥

मंगल

खोजौ साध सुजान, सो मारग पीव का।
परख शब्द गहौ शरन, मूल जहँ जीव का ॥ १ ॥

भौजल अगम अपार, लहर विकराल है।
कठिन यह पाँचौ मगर, बीच जम जाल है ॥ २ ॥

इन्द्रादिक ब्रह्मादिक, पार न पावहीं।
गुरु बहियाँ कढ़िहार, जो पार लगावहीं ॥ ३ ॥

निरख परख कढ़िहार, तौ घर पहुँचावहीं।
देत नाम की डोर, तौ दुख बिसरावहीं ॥ ४ ॥

बैठि के आनन्द महल, परम गुण गावहीं।
सुखमन सेज जगाय, तौ पिया रिझावहीं ॥ ५ ॥

बिन जल लहर अनूप, तौ मोती झिलमिले।
देख छत्र उजियार, तौ हंसा हंस मिले ॥ ६ ॥

अग्र जोत उजियार, तौ पंथ सिधावहीं।
कोटिन भान निछावर, आरत साजहीं ॥ ७ ॥
का लिखि दीन्हें पान, तौ तिनका तोरई।
का नरियर के मोड़े, जो जम घर बोरई ॥ ८ ॥
सत लिख दीन्हे पान, सो तिरगुन तोरई।
सुरत फूल बर मूल, नारियर मोरई ॥ ९ ॥
नरियर भेद अगम्म, संत जन मोरई।
कहैं कबीर तेहि जाचौ, तौ बंदी छोरई ॥१०॥

मंगल

तेरो संगी निकरि गयौ दूर। सुहागन आय मिलो ॥टेक॥
आया संदेशा आदि घरै का। लिए शब्द टक सार ॥ १ ॥
सतगुरु घाट अगम मोहिं चढ़ना। चढ़न के पंथ सिधार ॥ २ ॥
नवएँ धाम कुंजी खोलिये। दसएँ गुरु परताप ॥ ३ ॥
चौका चार गुप्त हम कीन्हा। ता का सकल पसार ॥ ४ ॥
कहैं कबीर धर्मदास से। यह चौका है निरधार ॥ ५ ॥

॥ चौपाई ॥

यह कबीर चौका अस भाखा। मूल वृक्ष तजि पकड़ो साखा ॥
पंथ राह चौका अस जाना। सोइ कबीर पन्थी को माना ॥
कहि कबीर सो राह उठाई। अपने मत की राह चलाई ॥
झूंठा पंथ जगत सब लूटा। कहा कबीर सो मारग छूटा ॥
कहा कबीर जीवत निरवारा। तुम लै उलटी फांसी डारा ॥

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

सुन कर फूलदास सकुचाना। तुलसी बचन सत्त कर माना ॥

तुम कबीर बिधि भाखी रीती । ता में नेक न कही अनीती ॥
जो कबीर ने पंथ चलाई । सो ही तुमने राह बताई ॥
साहब ने इक बानी भाखा । धरमदास कुल दीन्ही साखा ॥
बंस बयालिस तुम्हरे होई । अटल राज भाखा पुनि सोई ॥
ऐसी शब्द साख समझावै । और ग्रंथ यह भेद बतावै ॥
अस कबीर अपने मुख भाखा । अटल बयालिस बंसी साखा ॥
या की तुलसी कस कस भइया । कहौ बुझाय कैसी विधि कहिया ॥
कहि कबीर ने बंस बखाना । सो कहो तुलसी केहि विधि जाना ॥
बंस बयालिस अटल बतावा । कस कस धर्मदास सोइ गावा ॥
या की विधि विधि भेद बतइये । सो तुलसी वरतंत सुनइये ॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

बंस बयालिस भाखि सुनाऊँ । मुख कबीर विधि मैं समझाऊँ ॥
जो कबीर मुख भाषे बैना । ताकी विधी सुनाऊँ सैना ॥
काया बीर कबीर कहाई । शब्द रूप है घट के माहीं ॥
ताको नाम कबीर कहाई । सो कबीर है जग के माहीं ॥
चोथे पद से शब्द जो आवै । सत कबीर सोइ नाम कहावै ॥
निज निज पद से शब्द जो आवै । धर्मदास तेहि नाम कहावै ॥
काया नीर कबीर कहाई । धर्मदास यह मन है भाई ॥
एक शब्द और एक कबीरा । धर्मदास मन भया अनीरा ॥
धर्मदास को पंथ बतावा । धर्मदास मन शब्द समावा ॥
ता की पंथ राह बतलाई । यह कबीर मुख अपने गाई ॥
काया बीर कबीर कहावा । धरमदास मन को दरसावा ॥
बंस बयालिस मन के भाई । ता की विधी कहूँ समझाई ॥

चालिस बंस बास मन केरा । इकतालिस स्रुत सार बसेरा ॥
विधी बयालिस शब्द बखाना । ऐसे बयालिस अटल कहाना ॥
यह कबीर मुख भाख सुनावा । तुम कुछ और और ठहरावा ॥
मन और सुरत शब्द में जावैं । अस अस बयालिस अटल कहावैं ॥
मन और सुरत शब्द भया मेला । अस कबीर भाखा निज खेला ॥
ग्रंथ माहिं प्रति देखो साखी । यह कबीर मुख अपने भाखी ॥
अब आगे का कहूँ बखाना । फूलदास सुनियौ दै काना ॥
भिन-भिन भाखूं भेद बुझाई । आदि अंत सुन गुन मन माहीं ॥
अगम निगम भिन-भिन कर भाखी। कहैं कबीर स्रुति समझौ वाकी ॥
औरौ और संत सब गाये । जोइ जोइ अगम पंथ पद पाये ॥
जिनकी विधि बताओ साखी । कहि कबीर सोइ संतन भाखी ॥
जिनकी सुरत अगम पुर धाई । तिन तिन की पुनि साख सुनाई ॥
कहि कबीर सोइ प्रथमे भाखा । छूटै तिमिर होय अभिलाखा ॥
सुन और महासुन्न के पारा । जहँ वह सार शब्द विस्तारा ॥
सुन और महा सुन्न पुनि गावा । हम अनाम निःनाम सुनावा ॥
यहि आलोक कबीर लखावा । ता पीछे सतलोक बतावा ॥
सुन और महा सुन्न उन गावा । हम अनाम निःनाम सुनावा ॥
सत्त पुरुष सत लोक कहाये । ता को हम सतनाम सुनाये ॥
सोलह सुत कब्बीर बखाना । हमने सोलह निरगुन ठाना ॥
सोलह माहिं निरंजन पूता । हम भाखा निरगुन मज़बूता ॥
सोइ निरंजन मन भया भाई । जा ने जग रचना उपजाई ॥
हम निरगुन से सरगुन भाखा । मन को सरगुन कहि कर राखा ॥
मन सरगुन सब जग उपजाई । कहि कबीर तुलसी पुनि गाई ॥
मनहिं कबीर निरंजन गावा । ब्रह्मा विष्णु शिव पुत्र कहावा ॥

निरगुन से सरगुन मन भाखा । हम पुनि तीन गुनन में राखा ॥
तीनों गुण मन में उपजाई । ब्रह्मा विष्णु शिव गुण के नाई ॥
सरगुन मनहिं निरंजन कहिया । मनहिं निरंजन निरगुन भइया ॥
यह कबीर विधि तुलसी कहिया । सोई कबीर निज मुखहिं सुनइया ॥
संत मता विधि एकहि जाना । नाम कही विधि आनइ आना ॥
तासे तुमको बूझ न आवै । अनि अनि नाम धरे विधि गावै ।
सत साहब सतनाम सुनावा । सार सो शब्द अनाम कहावा ॥
निरगुन नाम निरंजन जाना । राम कहा सोई मनहिं बखाना ॥
कहि कहि संतन भाख सुनाई । सोई कबीर अपने मुख गाई ॥
और संत और विधि समझाई । येहि कबीर और विधि गाई ॥
मत पहुँचे पहुँचे पर एका । जो अबूझ सो बाँधे टेका ॥
जिन जिन अनुभव भाख सुनावा । अगम पंथ विधि एकहि गावा ॥
पुरइन पात कबीर सुनाये । पुरइन सोई संत सब आये ॥
पुरइन सेत कबीर सुनावा । सोइ सब सेत संत बतलावा ॥
सुरति शब्द कबीरहि खेला । सार शब्द मत अगम अकेला ॥
सूरति सत्त नाम कियौ सैला । सूरति सार शब्द करे मेला ॥
निःअक्षर सोइ आदि अमेला । कहिये सार शब्द करे मेला ॥
जो जो संतन कही अगारा । सो सो दास कबीर पुकारा ॥
या में भर्म न कीजै भाई । संत द्रोह नीच ऊँच न गाई ॥
संत को नीच ऊँच बतलावै । आदि अरु अंत नर्क गति पावै ॥
संत देश गति अगम बखाना । फूलदास तुम राह न जाना ॥
चौका पंथ ये हाट बज़ारा । चौका संत पंथ गति न्यारा ॥
फूलदास सुन सीतल भइया । तुलसी स्वामी अगम सुनइया ॥

हम तौ पंथ भेष में भूला । तुम कहा सार भेद पद मूला ॥
फूलदास ऐसी विधि बोला । तब हम अपनि दीन गति खोला ॥
तुलसि निकास संत कर चेरा । संत कृपा से अगम पद हेरा ॥
संत चरन परसादी पाई । तासे सब कहैं तुलसी गुसांई ॥
सब मिल के पुनि कहें गुसांई । मैंला मन मत बुद्धि न पाई ॥
मैं किंकर संतन कर दासा । संत चरन बिन और न आसा ॥
दास कबीर संत हैं स्वामी । उन सम फूलदास को जानी ॥
तुम साधू हो चतुर सुजाना । तुलसी जानो दास समाना ॥
मैं साधन का दास बिचारा । संत चरन की लागौं लारा ॥
दीन जान किरपा हरि हेरा । वे दयाल सब कीन निबेरा ॥
तुमहूँ साध दया के स्वामी । फूलदास तुम चरण नमामी ॥
भूल न मोरी अचरज मानो । मैं तुम्हरे चरनन लिपटानो ॥

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

फूलदास कह स्वामी सूझा । है कबीर तुलसी नहिं दूजा ॥
मैं महंत मन मान निकामा । मैं मति नीच न तुमको जाना ॥
हाथ चरण पर तुरत चलावा । दीन होय सिर चरण गिरावा ॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

तुलसी धाय पाँय को लीन्हा । चरण सीस तेहि अपना दीन्हा ॥
तुलसी कहै ऐसी नहिं कीजै । कृपा चरण अपना मोहिं दीजै ॥
फूलदास विधि कैसी भाखी । दीन साधना क्या कहुँ जा की ॥

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

फूलदास कह अंध अचेता । तुलसी स्वामी दीन्ही चेता ॥
मोरा मन मैला अति नीचा । यह महंत मत मन सम कीचा ॥
मोरी मत पर दृष्टि न दीजै । फूलदास अपना कर लीजै ॥
तुम्हरे चरण माहिं निरवारा । बिना चरण नहिं होय उबारा ॥
जो कबीर सो तुम हो स्वामी । दया करो मोहिं अंतरजामी ॥
मैं अपनी गति कस २ गाऊँ । सुरत न छांड़े तुम्हरा पाऊँ ॥
एक बात मोरे मन आई । भाखो स्वामी तुलसि गुसांई ॥
है शरीर में बीर कबीरा । सात दीप नौ खंड का बीरा ॥
ऐसी साखि कबीर पुकारा । बूझौ यह बिधि कौन विचारा ॥
या कौ भेद भर्म मोहिं आवा । भाखो स्वामी भरम नसावा ॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

फूलदास सुनियौ दै काना । या का भाखूं सकल विधाना ॥
धरमदास मन ही को जानो । काया बीर कबीर बखानो ॥
बिधि कबीर संवाद बखाना । धरमदास मन तुलसी जाना ॥
काया बीर मन कहि संवादू । यह कबीर मुख भाखी आदू ॥
सातौ दीप कबीर समाना । सो कबीर मन माहिं भुलाना ॥
मन भूला इन्द्री संग साथा । काया कबीर देह में राता ॥
सात दीप नौ खँड समाई । रहत कबीर भर्म उपजाई ॥
तन संग कर्म माहिं किया बासा । गपजै बिनसै पुनि २ नासा ॥
तन सँग पाया हिये रहे सोगा । उपजै बिनसै दुख सुख भोगा ॥

मन से इन्द्री बास उड़ाई। सो मन धरमदास है भाई॥
काया बीर जो धरम न जाने। होय कबीर आदि पहिचाने॥
सुरत सैल जो चढ़े अकासा। फोड़ि अकाश अमर पद बासा॥
सत्त गहै सतगुरु पद पासा। सत्तलोक सतपुरुष निवासा॥
ताके परे अगम पुर धामा। देखै लोक अलोक अनामा॥
सत कबीर वह वहँ को जाई। और कबीर भौ भटका खाई॥
सत्त कबीर जाहि कर नामा। चढ़ै सुरत सतलोक समाना॥
सतगुरु सत्तपुरुष है स्वामी। सो गुर करै चेला परमानी॥
सतगुरु सत्तपुरुष है सैला। वह कबीर सतगुरु का चेला॥
वह कबीर जेहि राह बतावै। सुरत सैल सोइ अगम लखावै॥
वह कबीर भौ पार लगावै। और कबीर भौ भटका खावै॥
और गुरु चेला झूंठ पसारा। दोनों डूबे भौ जल धारा॥
सतगुरु सत्तपुरुष की बाटा। चेला चढ़ै सुरत से घाटा॥
सोइ चेला है पद परवाना। और सगरा जग निगुरा जाना॥
कनफूंका से काज न होई। दोनों जाय नरक में सोई॥
सत्य सोई गुरु गगन प्रकासा। जा से मिटै काल की त्रासा॥
गगन चढ़ै सोई सतगुरु पाई। नाहीं तौ चेला निगुरा भाई॥
गगन चढ़ै गुरु परसै आई। चेला से पुनि गुरू कहाई॥
सत्त कबीर ताहि को नाई। काया कबीर को राह बताई॥
कनफूंका गुरु जग व्यौहारा। उनसे न उतरै भौजल पारा॥
सतगुरु सत्त कबीरहिं पावै। चौका की विधि विधी बतावै॥
सुरत शब्द की डोर लखावै। चौके से चौथा पद पावै॥
शब्द शोर जो उठे अखंडा। सुरत राह से चढ़ गई डंडा॥
होवै सत्तपुरुष पद मेला। सो कबीर सतगुरु का चेला॥

सतगुरु मिलै पान कर आना । बिन सतगुरु कोइ राह न जाना ॥
सो कबीर चौका विधि जानै । चौथे पद की राह बखानै ॥
चौका विधि भिन्न २ बतलावै । पंथ राह सतगुरु दरसावै ॥
सूरत चढ़े पंथ जब पावै । चौका पंथ राह सोइ आवै ॥
यह चौका कबीर बतावा । चौका राह रीति समझावा ॥

फूलदास उवाच

॥ दोहा ॥

फूलदास बिनती करै, तुलसी स्वामी साथ ।
चौका विधि बतलाइये, कस २ विधि विख्यात ॥

तुलसीदास उवाच

॥ दोहा ॥

फूलदास विधि २ सुनो, चौका विधि सब सार ।
जो कबीर मुख भाखिया, सो विधि हम निरवार ॥

॥ चौपाई ॥

चौका विधि काया में गाई । जो कबीर ने कही लखाई ॥
सिलपिली दीप जलखंडी राजा । यह सब विधि काया में साजा ॥
पांच फूल नरियर के गावा । सो सब काया माहिं लखावा ॥
सतगुरु मिलैं तौ भेद बतावैं । नरियर मोड़त बास उड़ावैं ॥
बहुतक नरियर मोड़े भाई । पत्थर पर फोड़े तुम जाई ॥
नरियर मोड़त बास उड़ाई । तुमने गंध बास ठहराई ॥
यासे भेद मिलै नहिं भाई । ढूंढ़ौ बनिये हाट बिकाई ॥
अब वो पान का भाखूं लेखा । पान परे पर आवन पेखा ॥
तुम बरई का पान मँगावा । बीरा कर २ ताहि खवावा ॥
बीरा पान कबीर लखावा । सोई पान घट माहिं बतावा ॥

सत्त शब्द पहिले परवाना । सोइ कोई साधू बिरले जाना ॥
मेवा आठ बखाने जोई । वह अठमेवा पुरुष है सोई ॥
सत कबीर ऐसी विधि भाखा । मेवा फल लीन्हे सिष साखा ॥
काया पूर जोत है ताई । तुम कपूर बनिये से लाई ॥
इन्द्री पांच वासना नासा । पांचौं बासन तन में बासा ॥
तुम लीन्हा तांबा और कांसा । या से भूले अगम तमासा ॥
पूंगीफल सूपारी गाई । स्वांसा पवन चलै तेहि माहीं ॥
सो पारी पारी पद जाई । तुम बनिये की हाट मंगाई ॥
सेतै वस्तर बास बतावा । तुम बज़ार से कपड़ा लावा ॥
उन चन्दा दर तानि बतावा । तुम घर कपड़ा बांधि तनावा ॥
उन तंदूल सेर सवा बतावा । तुम चौके चावल मंगवावा ॥
कदली पत्र छेदन उन कहिया । तुम केले के खंभ गड़इया ॥
सेत मिठाई उन बतलाई । तुम गुड़ मीठा खांड मँगाई ॥
नौ के तम चौका चिन्हवावा । तुम सगरा घर जाय लिपावा ॥
आवै रत उन साज बतावा । तुम दीपक की आरत लावा ॥
पांचौ शब्द अखंडित कहिया । तुम खँजरी पर शब्द सुनइया ॥
पाँच शब्द का कहूँ विधाना । न्यारा न्यारा ठाम ठिकाना ॥
सत्त शब्द सतलोक निवासा । जहवाँ सत्तपुरुष का बासा ॥
दूजा शब्द सुन्न के माहीं । तीजा अक्षर शब्द कहाई ॥
चौथा ओङ्कार विधि गाई । पंचम शब्द निरंजन राई ॥
चढ़ ब्रह्मंड फोड़ असमाना । सुरत शब्द में लगै निशाना ॥
ताहि परे सतलोक विराजा । अखंड शब्द ता ऊपर गाजा ॥
मिलै संत कोइ भेद बतावै । तब वह पंथ संत से पावै ॥
दीन होय गुरुवाई डारे । संत कृपा से उतरै पारे ॥

पंथो भेष टेक नहिं राखै। सुरत चीन्ह के द्वारा ताके ॥
चौका काया कबीर बतावा। बोली चीन्ह भेद जिन पावा ॥
जो समान चौका कर साजा। सो समान तन माहिं विराजा ॥
जो जो वस्तु चौका में गाई। भिन भिन घट भीतर दरसाई ॥
अंदर घट जो चौका कीन्हा। मरम सत्त लोक सोइ चान्हा ॥

छन्द

चौका विधि गाई भाखि सुनाई। जो कबीर मुख आप कही ॥१॥
तुलसी सब भाखी देखा आंखी। जब कबीर की साख दई ॥२॥
घट भीतर जाना भेद बखाना। फोड़ निशाना पार गई ॥३॥
अंतर गति गाई भेद सुनाई। तन भीतर विधि बात कही ॥४॥
देखा सत लोका अगम अलोका। चौका चौथे पार गई ॥५॥
येहि विधि हम भाखा नैनन ताका। सेत पुरइन तन तार लई ॥६॥
तोड़ा तन ताला खोल किवारा। अगम निगम का भेद कही ॥७॥
तुलसी कहे साँची यहि विधि बाँची। शब्द सुरत गुरु गैल गई ॥८॥

मंगल

सतगुरू मारग चीन्ह दीन दिल लाय के।
बूझ अगम की राह पाय पद जाय के ॥ १ ॥

दृग पर चौका पान जान जब पाइये।
नरियर सीस सम्हार सार समझाइये ॥ २ ॥

तत मत गुण हैं तीन सो तिलुका तोड़िया।
सुरत निरत निज नैन नारियर मोड़िया ॥ ३ ॥

सुरत चढ़ै असमान पोढ़ि सुर्त डोर है।
दीन्हा दीनदयाल काल सिर फोर है ॥ ४ ॥

इन्द्री वासन पांच बासना जाइया ।
अठमेवा है पुरुष बाट तब पाइया ॥ ५ ॥

काया मद्दे पूर कपूर जनाइया ।
पाँच तत्त तन अगिन जोत दरसाइया ॥ ६ ॥

होत जोत उजियार पार स्रुत से लखो ।
सार शब्द सत द्वार लार स्रुत से पको ॥ ७ ॥

मन बैठक है बास स्वांस सुन से भई ।
पवन सुपारी सेत सोई चौका कही ॥ ८ ॥

गगन चढ़ै असमान चदरवा तानिया ।
सेत माहिं है श्याम पान सोइ आनिया ॥ ९ ॥

नौतम द्वार लिपाय सौई नौ द्वार हैं ।
अष्ट कँवल दल फूल मूल सोइ सार है ।१०॥

येहि विधि चौका चार सार सोइ भाखिया ।
और चौका जग रीत चित्त नहिं राखिया ॥११॥

येहि बिधि चौका चाह थाह जब पाइया ।
अगम चढ़ै सोइ संत पंथ दरसाइया ॥१२॥

धरमदास धर ध्यान सुरत समझाइया ।
सुरत फोड़ असमान शब्द जब पाइया ॥१३।

अटल बयालिस बंस राज अस गाइया ।
या को भाखूँ भेद भाव दरसाइया ॥१४॥

चालिस सेर मन फेर इकतालिस स्रुत भई ।
विधी बयालिस शब्द अटल ऐसे कही ॥१५।

जो कोइ मिलि है संत भेद अस भाखिया ।
मन चढ़ सुरत सम्हार शब्द में राखिया ॥१६॥

सुरत शब्द मन मेल सैल समझाइया ।
अटल बयालिस बंस राज अस गाइया ॥१७॥

तुलसी भाखा भेद भाव दरसाइया ।
चौका कीन कबीर हंस मुक्ताइया ॥१८॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी कहै पुकार, फूलदास चौका विधी ।
यह गति तनहिं विचार, जो कबीर चौका कहा ॥
चौका चार चिताव, सुरत शब्द तुलसी कहै ।
दीन लीन मन भाव, भेद संत दरसावहीं ॥

॥ चौपाई ॥

अस चौका कब्बीर पुकारा । पुरइन पात पर साज सँवारा ॥
जो जल पुरइन बूझ न लाओ । तन में पुरइन खोज लगाओ ॥
तापर बैठ करो चित चौका । सूरत चढ़ै मिटे मन धोखा ॥
जब कोइ सूरत संत लखावैं । पुरइन सेत सुर्त चौका पावे ॥
पुरइन पात नभ गगन अकासा । पावै सोइ सतगुरु का दासा ॥
ता कर भेद लखावैं संती । पावै सोई कबीरा पंथी ॥
पान फोड़ के सुरत चढ़ावै । सहस कँवल दल अंदर पावै ॥
दो दल कँवल द्वार में ताके । सुन की धुन्न सुरत से राखे ॥
धरती ऊपर तरे अकासा । ता के चार कँवल मधि वासा ॥
वाके बीच नाल नल जानी । धधके ज़ोर गगन से पानी ॥
ता नाली चढ़ सुरत सँवारा । निरखै पिंड ब्रह्मंड पसारा ॥
ता के परे अगम गढ़ घाटी । हिय दृग नैन निरखिये बाटी ॥
जोड़ा कँवल दोय दल चारी । तिरबेनी सोइ संत पुकारी ॥

सुरत अन्हाय सुन्न के पारा । ताके परे अगम का द्वारा ॥
पुनि सुन महा सुन्न के पारा । सत्त लोक सतपुरुष अपारा ॥
सूरत सतगुरु मिले ठिकाना । तुलसी चौका भाखि बखाना ॥
सूरत शिष्य शब्द गुरु पावे । चौथा पद सतगुरु गति गावै ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी समझ बिचार, फूलदास चौका बिधी ।
यह गति मति है सार, जो कबीर चौका कहा ॥

॥ चौपाई ॥

फूलदास चौका बिधि जाना । यह कबीर मत माहिं बखाना ॥
चौका तन के माहिं सँवारा । यह कबीर बिधि माहिं पुकारा ॥
तुलसी राह पंथ बिधि गाई । सो सब समझ पड़ा मन माहीं ।
बिन सतसंग राह न पावै । सत्त २ तुलसी गोहरावै ॥
मन महंत कुछ काम न आवै । अंत बाद नरकै लै जावै ॥
यह सब भूल भाव हम चीन्हा । चौका पाटा जगत अधीना ॥
चौका से कुछ काज न होई । वह चौका औरै बिधि जोई ॥
तुलसी स्वामी चौका भाखी । बिधि बिधान बिधी कहि जाकी ॥
काया माहिं रीति बतलाई । सोइ चौका सत सत्त चिन्हाई ।
यह सब और पाखंड पसारा । भौजल खलक खानि की धारा ॥
जो कबीर चौका बिधि गाई । सो तुलसी बिधि समझ सुनाई ॥
चौका काया माहिं पुकारा । कहि कबीर कहि तुलसी सारा ॥
खूब २ मन में ठहरानी । तुलसी बचन सत्त कर मानी ॥
तुलसी कबीर भेद नहिं दूजा । हमरी बुद्धि नैन अस सूझा ॥
जग अजान कुछ मर्म न जाना । डिंभि पखंडि भेष भरमाना ॥

यह जग रीति जीत नहिं पावे । मेष पंथ सब पोल चलावे ॥
माला कंठी सेली माहीं । भूले पंथ मेष यहि राही ॥
जो कोई मंत्र ज्ञान को जानै । उन को बड़े संत कर मानै ॥
जो रथ गाड़ी बाज चलावै । जग सोइ बड़े साध ठहरावै ॥
गाय भैंस और खेती होई । चेला गाँव महंती सोई ।
माया मोह बँधा संसारा । जिनको साधू कहैं लबारा ॥
जग अंधा अंधे भये भेखा । यह दोउ पंथ इष्ट की टेका ॥
जग में इष्ट टेक लौ लावै । भेख टेक पंथी गोहरावै ॥
जग अंधा पुनि भेख भुलानो । यह सब काल राह रस जानो ॥
जहँ लग अंत पंथ जग माहीं । भूले फिरैं राह नहिं पाई ॥
चेला करै द्रव्य के काजा । भोजन खान पान कर साजा ॥
यहि आसा बस फिरे अयाना । बंधन जीव काल नहिं जाना ॥
जिनसे मुक्ति जगत सब मांगे । आपा संग रह भोग न त्यागे ॥
जस जस रीति जगत की होई । तस तस साधू समझ बिलोई ॥
अस अस साध जगत में लेखा । जो कथि कही सो नैनन देखा ॥
संत रीति रस जगत न जाना । डिंभ करै तेहि संत बखाना ॥
संत दयाल दरश नहिं चीन्हा । उन बिन फिरै करम लौलीना ॥
वे दयाल के दर्शन पावै । मुक्ति राह अरु अगम लखावै ।
जिनके बड़े भाग जग माहीं । नित प्रति संत चरन लौलाई ॥
काल जाल और जम की फांसी । दरशन संत कर्म भये नासी ।
वे साधू बिरले जग माहीं । जग जल में जस कँवल रहाई ।
वे सज्जन सत साध कहावैं । उनकी गति मति बिरले पावैं ॥
संत भेद भिनि कोउ-कोउ जाना । भेष डिंभ सब भर्म भुलाना ॥
वे सब जग में कीन दुकाना । यामें जक्त भेष लिपटाना ॥

जीव लोक की राह निनारी । कृपा संत बिन पावै न पारी ॥
हम तौ जन्म बाद सब खोवा । समझ पड़ी तब सिर धुन रोवा ॥
बार बार नर देह न पावै । यह तन दुर्लभ सब गोहरावै ॥
जोगी ऋषी मुनी अरु देवा । जप-तप जोग ज्ञान बहु सेवा ॥
पुनि जिन नर देही नहिं पाया । हम अबूझ तन बाद गँवाया ॥
अब यह समझ पड़ा सब लेखा । भेष पंथ में कछू न देखा ॥
भेष पंथ मद राह अबूझा । सब अबूझ बस काहू न सूझा ॥
मान बड़ाई दोज़ख काजा । जिह्वा इन्द्री सब सुख साजा ॥
यह कबीर ने कहा पसारा । उन सब कीन जीव निरबारा ॥
ना कोई बूझै समझ बिचारा । इन सब कीन दुकान बज़ारा ॥
यह दुकान से लोग जो जावै । तो सब जगत रहन नहिं पावै ॥
सांच झूंठ सब परा निबेरा । चित चीन्हा नैनन से हेरा ॥
तुलसी बिधि २ सत्त बखानी । मन में ठीक २ पहिचानी ॥
तुलसी स्वामी संत सुजाना । अस २ बूझ सुनाई काना ॥
तन और प्रान छूट सब जाता । यह पुनि भेद हाथ नहिं आता ॥
साखी शब्द अनेकन देखा । ग्रन्थ कबीर अनेक बिबेका ॥
सो सब देख २ पचिहारा । वस्तु न पाई रहे असारा ॥
सार भेद संतन ने जाना । सो ग्रंथन में नाहिं बखाना ॥
साखी शब्द पढ़ै जो कोई । वस्तु न पावै सिर धुन रोई ॥
कह्यौ कबीर सार पद गुप्ता । परघट माहिं लखा सब थोथा ॥
यह तौ संत गुप्त मत भाखी । ताकी नकल ग्रन्थ में राखी ॥
ढूंढ़ै अब यामें अज्ञाना । पच पच मूरख भये हैराना ।
यह सब ग्रंथ देख हम भूला । साखी शब्द माहिं बहु झूला ।
आंखी फार फार हम जोवा । जनम अकारथ बादहि खोवा ॥

शब्द साखि जो पढ़ि २ चलि है । संत दृष्टि बिन कछू न मिलि है ॥
जो कबीर मुख कह कर भाखी । संत दृष्टि बिन पड़े न आंखी ॥
ता से संत चरन सिर दीजै । कारज और बात में छीजै ॥
जो कबीर ग्रंथन में कहिया । सो तौ भेद संत पै रहिया ॥
हम झूंठे ग्रंथन के माहीं । केहि बिधि हमरे हाथै आई ॥
संत सुरत चढ़ गये जो पारा । पावै तिनसे भेद निनारा ॥
जगत भेष नहिं भेद विचारै । यह कहा समझै सार असारे ॥
दीन होय सतसंगत तोला । जासे सूझै वस्तु अमोला ॥
तोले दीन होय निज दासा । सो सुरति सार मिलै उन पासा ॥
हम तौ सरन संत कर लीन्हा । और बात नहिं आय यक़ीना ॥
जो कोइ लाख लाख समझावै । हमरे मन में एक न आवै ॥
कहौ को खोज सार कर दीन्हा । हम तौ स्वामी तुलसी चीन्हा ॥
संत कही और दास कबीरा । जो जो अगम पंथ पद धीरा ॥
जिन जिन स्वाद पाय पद हेरा । होइ हौं उन चरनन कर चेरा ॥
चरन लाग तुलसी के तीरा । उनहिं लखाया अद्भुत हीरा ॥
अब कहुँ चित लागे नहिं भाई । तुलसी वस्तु अमोल लखाई ॥
बार बार चरनन सिर नाई । करि हैं तुलसी मोर सहाई ॥
अब तौ पोढ़ पोढ़ कर पकड़ा । तुलसी चरनन में मन जकड़ा ॥
और कहूँ मोहि बोध न आवै । जो कोइ कोटि कोटि समझावै ॥
समझ पड़ा सब बात बिधाना । तुलसी बिन सूझै नहिं आना ॥

॥ दोहा ॥

फूलदास बिनती करै, पुनि पुनि सरन तुम्हार ।
मैं अचेत चेतन कियौ, तुलसी उतरयौ पार ॥

तुलसीदास उवाच

॥ दोहा ॥

फूलदास सज्जन बड़े, तुम चित मति बुधि सार ।
संत चरन अब मन बस्यौ, पैहौ सतसंग सार ॥

॥ चौपाई ॥

फूलदास तुम साध सुजाना । तुम्हरी बुधि निरमल परमाना ॥
दिन दोपहर भयौ मध्याना । अब परसादी करो समाना ॥
आटा चून चना कर होई । करौ प्रसाद भाजी संग सोई ॥
घीव न पास न पैसा होई । नोंन मिर्च चटनी संग सोई ॥
किरपा कर परसाद बनाई । पुनि वाको सब भोग लगाई ॥

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

हम नहिं अपने हाथ बनै हैं । सीत उछिष्ट चरनामृत पैहैं ॥
तुलसी उठ परसाद बनावा । भया परसाद साध सब आवा ॥
सब साधू मिल भोग लगाई । भोजन कर आसन पर आई ॥
फूलदास बंदगी सिर नाई । सीस टेक कर परसे पाई ॥
हाथ जोड़ कर बिनती लाई । स्वामी मोहि भव पार लगाई ॥
हमहूँ दीन डंडवत कीन्हा । सीस नवाय चरन पुनि लीन्हा ॥
फूलदास सँग रहि इक साधा । मनमुख और मान मद माता ॥
रेतीदास ताहि कर नामा । फूलदास देखि घबराना ॥
पुनि बोला मन में रिसियाना । स्वामी अब चलिये अस्थाना ॥
फूलदास कहै आज न आवौं । तुम सब मिलि अस्थानै जाओ ॥
हमहूँ भोर बिहाने अइ हैं । रात यहीं चरनन में रहि हैं ॥

तिन पुनि तरक कीन इक बाता । तुमहूँ रहिहौ इनके साथा ॥
हम कौ सूझ पड़ा अस लेखा । तुम्हरी मति बुधि अचरज देखा ॥

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

गुसा भये बोले अस बोली । ली उतार दीन्हीं सोइ सेली ॥
फूलदास दीन्हीं तेहि हाथा । रेती सीस नवायो माथा ॥
गल बिच डार महंती दीन्हा । सुखपालैं बख़्शीशी कीन्हा ॥
तुम तौ करौ महंती जाई । अब हम नहिं अस्थानै आई ॥
चेला चला बैठ सुखपाला । फूलदास भया और हवाला ॥
चेला मारग मता विचारा । मनमें सोच किया अधिकारा ॥
छांड महंती हमको दीन्हा । यासे अधिक बात कुछ चीन्हा ॥
सब सुख भोग मनै नहिं लाये । यहतौ अधिक बात कुछ पाये ।
जो महंत पद होता भारी । तौ छांडत यह देत न डारी ॥
यह सब बात तुच्छ सम होई । तब हमरे सिर डारी सोई ॥
यह विचार मन माहिं समाना । मति भई शुद्ध उठा अस ज्ञाना ॥
फिर पीछे मारग से आये । सुख पालै अस्थान पठाये ॥
सब मिलके जाओ अस्थाना । हम महंत संग उपज्या ज्ञाना ॥
मंगल दास रहे गुरु भाई । टोपी सेली तेहि पहिराई ॥
आये पुनि महंत के पासा । जहं तुलसी की कुटी निवासा ॥
चौरदार सुखपाली गइया । चौरा पर उन खबर जनइया ॥
मंगल चेला मन पछिताना । चौरा सून भया अस्थाना ॥
पुनि विचार कीन्हा मन माहीं । यह अस्थान महंती जाई ॥
यह दानों मिल कीन बिचारा । हम छांड़े तौ होय बिगारा ॥

जो कुछ होय होय सो होई। अब निबाह बिन बने न सोई।।
मंगल मन में बहुत रिसाना। सेली पहिर बैठ अस्थाना॥
रेतीदास कुटी पर आवा। ले पकड़े तुलसी के पाँवा।
रेतीदास बोले अस बानी। मैं रहिहौं इनके ढिग स्वामी॥
कुटी सामने कुटी बनाई। दोनों रहे कुटी के माहीं॥
रेतीदास दीन दिल आनी। स्वामी से पूंछौ इक बानी॥
गुरु चेला का कैसा लेखा। सो स्वामी मोहिं कहौ विवेका॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

रेतीदास सुनो तुम भाई। याकी विधी कहूँ समझाई॥
नहिं कोइ गुरु नहीं कोई चेला। बोले सब में एक अकेला॥
जो कोइ गुरु चेला कर जाना। सोइ सोइ पड़ै नर्क की खाना॥
एक बोल सब माहिं विराजा। गुरु चेला दोइत विधि साजा॥
चेला होय नीक विधि भाई। गुरू होय चौरासी जाई॥

॥ दोहा ॥

तुलसी मैं तू जो तजै, रहै दीन मत सोय।
गुरू नवै जो शिष्य को, साध कहावै सोय॥
तुलसी कह रेती सुनो, कहुँ कबीर मुख बात।
कहि कबीर सब में बसूँ, को गुरु चेला साथ॥

॥ चौपाई ॥

कह कबीर सब माहिं बिराजूँ। सब में किया हमी सब साजू॥
कह कबीर हम सबके माहीं। सब हम किया सभी सब ठाईं॥

सबके माहीं बासा कीन्हा । सब मैं हमी हमी को चीन्हा ॥
जो महंत चेला करै भाई । सब में रहा कबीर समाई ॥
यह विधि विधी कबीर पुकारा । का को चेला करै लबारा ॥
घट घट माहिं कबीर समाना । का को चेला करै हैवाना ॥
कह कबीर मोहिं सब में बूझा । चेला करौ आँख नहिं सूझा ॥
है कबीर सब काया माहीं । ता कौ तुम चेला ठहराई ।
कह कबीर सब ठाम ठिकाना । सोइ कबीर का फूंको काना ॥
तुम्हरी मत कहो कौन हिराई । कह कबीर हम ठावै ठाई ॥
कहते तुमको लाज न आई । कहौ कबीर फिर गुरू कहाई ॥
कहौ कबीर सब माहिं समाना । गुरु कबीर की करौ बखाना ॥
तुम कबीर को स्वामी गाओ । पुनि वाको चेला ठहराओ ॥
कस कस ज्ञान तुम्हारा भाई । भूल न अपनी देखो जाई ॥
अगम निगम का ज्ञान सुनाओ । अपने घर की भूल न पाओ ॥
कह कबीर मुख गाना गाओ । शब्द न खोजो पोल चलाओ ॥
नहिं कोइ तुमको पकड़न हारा । सो धन शब्द समझ की लारा ॥
ता से सोल पोल तुम लाई । पकड़े तौ कछु जवाब न आई ॥
और अनेक बात अस नासी । कौन कौन कहुँ तुम्हरी फाँसी ॥
अपना मता ऊँच कर मानो । ऊँचे का कुछ मर्म न जानो ॥
कहि कबीर मुख साँची बानी । तुम अबूझ कुछ परख न जानी ॥
कहि कबीर कथनी को गाओ । बूझे जवाब न ताको पाओ ॥
एक सवाल हम पूछैं भाई । कँवल चौरासी कौने ठांई ॥
या की भेद राह बतलाई । कौन ठांव वे कँवल रहाई ॥
नौ लख कँवल कबीर बखाना । कहो तुम उनका कौन ठिकाना ॥
सहस कँवल दल सो पुनि भाखा । अष्ट कँवल दल भेद कहौ ताका ॥

चार कँवल दल देव बताई। दो दल कँवल कौन से ठांई॥
यह सब कँवल जोग से न्यारा। जोगी न जाने भेद बिचारा॥
कँवल चक्र षठ जोगी गाई। उन कँवलन से न्यारे भाई॥
या की विधि २ कहौं बुझाई। कहिये कबीर पंथ तेहि नाई॥
जो कबीर मुख भाख बखानी। ताकी तुम से पूछौं बानी॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

अब सुन भेद कहूँ समझाई। रेतीदास सुन चित्त लगाई॥
षष्ठ कँवल जोगी पुनि गाई। या का तुमको भेद बताई॥
रहे चार दल गुदा के माहीं। और दूजे की विधी बताई॥
छः दल कँवल नाभि के नीचे। अष्ट दल कँवल पुहमी के बीचे॥
पँखड़ी बारह हिरदे माहीं। सोलह पँखड़ी कंठ कहाई॥
उदित मुदित दुई दीप कहावें। तामें सहस कँवल को पावें॥
कँवल चक्र षट खुल के कहिया। संत कँवल भिन न्यारे रहिया॥
यह कँवला षट चक्र से न्यारा। उनको जाने संत विचारा॥
षोडस द्वार काया के माहीं। तुम जानो दस द्वार जनाई॥
छः त्रिकुटी काया के माहीं। तुम जानो पुनि एकै भाई॥
नाल सताइस काया माहीं। अट्ठाइस पुनि बंक कहाई॥
बाइस सुन्न संत बतलावा। यह कबीर मुख अपने गावा॥
मानसरोवर सुखमन नारी। तिरबेनी ब्रहमंड के पारी॥
इतना भेद कहा हम गाई। भिन्न २ यह कहूँ बुझाइ॥
यह हम कहा भाखि सोइ देखा। यह कबीर ने भाखा लेखा॥
जो कोइ या का भेद बखाने। पंथ कबीर जाहि को जाने॥

कहि कबीर की भाखि सुनावैं । ये झूठै औरन की गावैं ॥
अपना चखा स्वाद बतलावैं । और की करनी काम न आवै ॥
और की करनी बूझ बुझावै । सो अपना कारज नहिं पावै ॥
गुरु चेला का बूझौ लेखा । सो गुरु का मैं कहूँ विवेका ॥
जक्त गुरू नहिं संत पुकारा । सतगुरु भेद जगत से न्यारा ॥
जो कोई चढ़ै गगन को धावैं । सो सतगुरु के सरनै आवैं ॥
सतगुरु सत्त पुरुष हैं स्वामी । सो चौथा पद संत बखानी ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी कहे बुझाय, रेती यह विधि गुरु लखौ ।
चखौ अमर सद सार, देखि आदि अंतर मई ॥

॥ चौपाई ॥

सुन रेती मन संशय आनी । तुम ने औरे और बखानी ॥
जस जस बचन विधी समझावा । अस आगे कोउ संत न गावा ॥
औरो संत गये वोहि राही । सो अब उनकी साखि सुनाही ॥
सत्त सुधारस जिनकी बानी । कहिये नाम भेद गुरु छानी ॥
येहि विधि फूलदास पुनि बोला । पूछै विधी गुरू और चेला ॥
स्वामी याकी साखि सुनाई । अगम पंथ कोउ संतन पाई ॥
भिन २ न्यारा नाम बताई । जिनकी साखी शब्द सुनाई ॥
अनुभव भिन २ सब कर न्यारा । भाखौ एक एक विस्तारा ॥
संत संत की न्यारी बानी । एक एक की कहौ निशानी ॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

कहे तुलसी तुम सुनिये काना । संत शब्द का करूँ बखाना ॥
दादू मीरा नाभा भाई । नानक दरिया सूर सुनाई ॥

अरु कबीर पुनि भाखा भाई । और अनेक संत बिधि गाई ॥
जो जो संत अगमपुर धाये । जिन जिन साखी शब्द सुनाये ॥
संत चरन रज तुलसीदासा । कुछ कुछ भाखा अगम बिलासा ॥
तुलसी संत चरन की लारा । मेरी बुधि नहिं उन अनुसारा ॥
संत चरण महिमा पुनि भाखूं । उनके चरण सीस पर राखूँ ॥

॥ दोहा ॥

संत शब्द बिधि बिधि कहूँ, सुनियौ फूलादास ।
जो जो शब्द उन भाखिया, कहूँ चरन होइ दास ॥

शब्द घटरामायन

तुलसी तुल जाई, गुरु पद पकंज लखाई ॥ टेक ॥
मैं तौ गरीब कछू गुण नाहीं । मोको कहत गुसाईं ॥
जो कुछ कीन कीन करुनामय । मैं उनकी सरनाई ॥ १ ॥
मैं अति हीन दीन दारुन गति । घट रामायन बनाई ॥
रावण राम की जुद्ध लड़ाई । सो नहिं कीन बनाई ॥ २ ॥
यह तत सार ततो निज जानत । जो यह लखै लखाई ॥
काल काया परिवार मयाई । यह गुन ग्रंथन गाई ॥३ ॥
ता में सार पार पद न्यारा । सो कोई संत जनाई ॥
पंडित भेख जगत और ज्ञानी । भेद कोऊ नहिं पाई ॥ ४ ॥
अब बरतंत कहूँ याही को । भरत चत्रगुन भाई ॥
दसरथ सीता और कौसिल्या । सिया लक्षमन्न कहाई ॥ ५ ॥
कागभसुन्ड गरूड़ सबै सब । मंथा और केकाई ॥
रघुपति रंग संग परवारा । यह बिधि जगहि सुनाई ॥ ६ ॥
और सुनौ रावण रँग राई । सब परिवार बताई ॥
कुम्भकरण भभीखण भाई । इन्द्रजीत सुत राई ॥ ७ ॥

रानी राय मँदोदरि सोई । सब परिवार सुनाई ।।
यह घट माहिं घटा घट ही में । रामायन्न बनाई ।। ८ ।।

रावण ब्रह्म बसै त्रिकुटी में । लंका त्रिकुटि बनाई ।।
कुम्भ तनै करता मनही को । कुम्भकरन्न कहाई ।। ९ ।।

भय भौ खानि भभीखन भाई । सो भौ माहिं भ्रमाई ।।
इन्द्रजीत जीतै मनही कौ । सो इन्द्रजीत कहाई ।।१०।।

रावण ब्रह्म बसैं मन दौरी । ता कौ मंदोदरी बनाई ।।
मनकी दौड़ को दूर बहावै । त्रिकुटी ब्रह्म कहाई ।।११।।

दस इन्द्री रत दसरत कहिये । राम रमा मन जाई ।।
सत की सीता असत सिया को । कुमति कौसिल्या बसाई ।।१२।।

मन थिर सुरत करै थिर कोई । सो मन मंथा कहाई ।।
वहँ की बात कहौ कौन सुनाई । कर मन थिर केकाई ।।१३।।

लै छै रस मनही को भाई । लक्षमन बीर बड़ाई ।।
गो में रूढ़ गरूढ़ गिनाई । भय ले भसुन्ड भुलाई ।।१४।।

भय रत भर्म भरत है सोई । चाह त्रिगुन्न गिराई ।।
ता को नाम चतुरगुन कहिये । यह सब भेद बताई ।।१५।।

यह नौ द्वार काया के माहीं । सो हनुमान हँसाई ।।
यह तौ चिन्ह भिन्न बिन देखे । जोग करै सो जनाई ।।१६।।

काया सोध कसै इन्द्री को । त्रिकुटी ध्यान लगाई ।।
स्वांसा धाय बंक खुल खोलैं । सहस कँवल दल पाई ।।१७।।

जो कोइ जोग जुगत कर लाई । जेहि घट ब्रह्म दिखाई ।।
जोगी का जोग इष्ट जगही का । यह गति यौं बिधि गाई ।।१८।।

दूजा जोग ज्ञान गति गाई । आतम तत्त लखाई ।।
मुद्रा पाँच अवस्था चारी । ज्ञान तीनि गति गाई ।।१९।।

चाचरि भूचरि और अगोचरि । खेचरी खेह लगाई ॥
उनमुन उभै अकाश के ठांई । ज्ञान बिधी बतलाई ॥२०॥
रेचक पूरक कुम्भक कहिये । यह बिधि ज्ञान गिनाई ॥
और अवस्था अर्थ बताई । ज्ञानी किनहूँ न पाई ॥२१॥
जागृत सुपन सुखोपति कहिये । तुरियातीत कहाई ॥
तुरियातीत बसै वहि पारा । जो यह करै तिन पाई ॥२२॥
चारों बानी का भेद बताई । शास्तर संघ लखाई ॥
परा पश्यंती मधमा सोई । बैखरी बर्ण बताई ॥२३॥
यह सब जोग ज्ञान गति गाई । ज्ञानी यही बताई ॥
इनके परे भेद है न्यारा ॥ सो कोइ संत जनाई ॥२४॥
और सुनौ जो अगाध अघाई । संतन की गति गाई ॥
जाको भेद वेद नहिं जाने । जोगी किनहूँ न पाई ॥२५॥
परम हंस बैरागी गुसाईं । जगत की कौन चलाई ॥
यह कहुँ देखी कहुँ न कहाई । काहू प्रतीत न आई ॥२६॥
तुलसी तोड़ फोड़ असमाना । सूरत सार मिलाई ॥
सरकी चांप चली धौ धाई । धनुवा धनुष चढ़ाई ॥२७॥
तीन लोक तिल खेई पारा । चौथे जाय समाई ॥
वे साहब सत नाम अपारा । तिन मोहिं अंग लगाई ॥२८॥
याके पार परे गति न्यारी । सो कोइ संत विचारी ॥
जाको नाम अनाम अमाई । केहि बिधि कहूँ बुझाई । २९॥
ताके रंग रूप नहिं रेखा । नाम अनाम कहाई ॥
तुलसी तुच्छ कुच्छ नहिं जाने । ता घर जाय समाई ॥३०॥
सब संतन के चरण सीस धर । आदि अजर घर पाई ॥
तीन लोक उपजै और बिनसै । चौथे के पार बसाई ॥३१॥

। सोरठा ॥

यहि बिधि रघुपति रंग, रावण संग प्रसंग भयो ।
सुरत चढ़ी चित चंग, ज्यों पतंग डोरी गहो ॥

शब्द दादूजी

दादू देखा अदीदा । सब कोइ कहत सुनीदा ॥ टेक ॥

हवा हिरस अंदर बस कीदा । तब यह दिल हुआ सीधा ॥
अनहद नाद गगन गढ़ गरजा । तब रस पाया अमी दा ॥१॥
सुखमन सुन्न सुरत महलों नभ । आया अजर अक़ीदा ॥
अष्ट कँवल दल में दृग दर्शन । पाया ख़ुद ख़ुदी दा ॥२॥
जैसे दूध दूध दधि माखन । बिन मथे भेद न घी दा ॥
ऐसे तत्त मत्त सत साधन । तब टुक नशा पिय पी दा ॥३॥
नहिं यहि जोग ज्ञान मुद्रा तत । यह गति और पदीदा ॥
जो कोइ चीन्ह लीन यह मारग । कारज हो गया जी दा ॥४॥
मुर्शिद सत्त गगन गुरु लखिया । तन मन कीन उसी दा ॥
आशिक यार अधर लख पाया । हो गया दीदम दीदा ॥५॥

शब्द नानक साहब

उघरा वह द्वारा । वाह गुरू पर वारा ॥ टेक ॥
चढ़ गइ चंग पतंग संग ज्यों । चंद चकोर निहारा ॥
सूरत शोर जोर ज्यों खोलत । कुंजी कुफ़ल किवारा ॥ १ ॥
सूरत धाय धसी ज्यों धारा । पैठ निकस गई पारा ॥
आठ अटा की अटारि मँझारा । देखा पुरुष निनारा ॥ २ ॥
निराकार आकार न जोती । नहिं वहँ वेद बिचारा ॥
ओङ्कार करता नहिं कोई । नहिं वहँ काल पसारा । ३॥

वह साहब सब संत पुकारा । और पाखंड पसारा ॥
सतगुरु चीन्ह दीन यह मारग । नानक नजर निहारा ॥ ४ ॥

शब्द दरिया साहब

दरिया दरवाजा खुल गया अजर किवारा ॥ टेक ॥
चमकी बीज चली ज्यों धारा । ज्यों बिजली बिच तारा ॥
खुल गया चंद बंद बदरी का । घोर मिटा अँधियारा ॥ १ ॥
लै लगी जाय लगन के लारा । चांदनी चौक निहारा ॥
सुरत सैल करै नभ ऊपर । बंक नाल पट फारा ॥ २ ॥
चढ़ गई चाप चली ज्यों धारा । ज्यों मकरी मुख तारा ॥
मैं मिली जाय पाय पिया प्यारा । ज्यों सलिता जल धारा ॥ ३ ॥
देखा रूप अरूप अलेखा । लेखा वार न पारा ॥
दरिया दिल दरवेश भये तब । उतरे भौजल पारा ॥ ४ ॥

शब्द मीरा

मीरा मन मानी । सुरत सैल असमानी ॥ टेक ॥
जब जब सुरत लगे वा घर की । पल-पल नैनन पानी ॥
ज्यों हिय पीर तीर सम सालत । कसक-कसक कसकानी ॥ १ ॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवै । भावत अन्न न पानी ॥
ऐसी पीर विरह तन भीतर । जागत रैन बिहानी ॥ २ ॥
ऐसा बैद मिलै कोइ भेदी । देश बिदेश पिछानी ॥
ता से पीर कहूँ तन केरी । फिर नहिं भरमों खानी ॥ ३ ॥
खोजत फिरूँ भेद वहि घर को । कोई न करत बखानी ॥
रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु । दीनी सुरत सहदानी ॥ ४ ॥
मैं मिली जाय पाय पिया अपना । तब मोरी पीर बुझानी ॥
मीरा खाक खलक सिर डारै । मैं अपना घर जानी ॥ ५ ॥

शब्द सूरदासजी

मुरली धुन गाजा । सूर सुरत सर साजा ॥ टेक ॥
निरखत कँवल नैन नभ ऊपर । शब्द अनाहद बाजा ॥
सुन धुन मैल मुकर मन मांजा । पाया अमी रस झांझा ॥ १ ॥
सूरत संध सोध सत काजा । लख लख शब्द समाजा ॥
घट २ कुंज पुंज जहँ छाजा । पिंड ब्रहमंड बिराजा ॥ २ ॥
फोड़ अकाश अललपछ भाजा । उलट के आप समाजा ॥
ऐसे सुरत निरख निःअक्षर । कोटि कृष्ण तहँ लाजा ॥ ३ ॥
सूरदास सार लख पाया । लख लख अलख अकाया ॥
सतगुरु गगन गली घर पाया । सिंध में बुन्द समाया ॥ ४ ॥

शब्द नाभाजी

नाभा नभ खेला । कँवल केल सर सैला ॥ टेक ॥
दरपन नैन सैन मन मांजा । लाजा अलख अकेला ॥
पल पर दल दल ऊपर दामिन । जोत में होत उजेला ॥ १ ॥
अंडा पार सार लख सूरत । सुन्नी सुन्न सुहेला ॥
चढ़ गई धाय जाय गढ़ ऊपर । शब्द सुरत भया मेला ॥ २ ॥
यह सब खेल अपेल अमेला । सिंध नीर नद मेला ॥
जल जल धार सार पद जैसे । नहीं गुरू नहिं चेला ॥ ३ ॥
नाभा नैन ऐन अंदर के । खुल गये निरख निहाला
संत उछिष्ट वार मन झेला । दुर्लभ दीन दुहेला ॥ ४ ॥

शब्द कबीर साहब

कबीर पुकारा । मैं तो जगत से न्यारा ॥ टेक ॥
आदि पुरुष अविगत अविनासी । दीप लोक पद पारा ॥
सूरत सहर हेरि हिय द्वारा । शब्द न सिंध अकारा ॥ १ ॥

काल न जाल स्वाल नहिं बानी । सो घर अधर हमारा ॥
अंत न आदि साध कोई जाने । सतगुरु पदम निहारा ॥ २ ॥
नहिं तहँ आदि निरंजन जोती । सत्त पुरुष दरबारा ॥
ब्रह्मा बिश्नु वेद विधि नाहीं । नहीं आदि अङ्कारा ॥ ३ ॥
यह सब यार प्यार लख पूरा । रूप न रेख जहूरा ।
कहैं कबीर संत वहि द्वारा । चकवा चौंक हुँकारा ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

फूलदास तुलसी कहै, संत शब्द की रीति ।
जो २ गये अगाध को, सोई २ संत समीर ॥

॥ छन्द ॥

तुलसी गति गाई शब्द सुनाई ।
पंथ अगम सुर्त सार भई ॥ १ ॥
नानक और दादू दरिया साधू ।
मीरा सूर कबीर कही ॥ २ ॥
नाभा नभ जानी भाखि बखानी ।
सुरत समानी पार गई ॥ ३ ॥
सब की विधि न्यारी एक बिचारी ।
सब संतन इक राह लई ॥ ४ ॥
सब चढ़े इक धारा पहुँचे पारा ।
लखा गगन गति गवन गई ॥ २ ॥
कोइ करि है संका महा मति-रंका ।
तुलसी डंका दीन कही ॥ ६ ॥
यह सत मत भाखा देखा आंखा ।
साख शब्द मैं गाय कही ॥ ७ ।

यह करी बखाना भेष न जाना ।
शब्द निशाना सुरत लई ॥ ८ ॥

कागज नहिं स्याही ग्रंथ न पाई ।
गाय गाय सब जन्म गई ॥ ९ ॥

कोई संत लखैहैं न्यारी कहिहैं ।
कथन बदन में नाहिं नहीं ॥१०॥

जो पोथी पढ़ि हैं ज्ञान से अड़ि हैं ।
नर्क पड़े पन भक्ति नहीं ॥ ११ ॥

बिन भक्ति न पैहैं जन्म गँवैहैं ।
संत सरन बिन राह नहीं ॥ १२ ॥

जिन जिन यह मानी सत कर जानी ।
भक्ति संत सब भाखि कही ॥ १३ ॥

संतन को जाना शब्द पिछाना ।
सुरत समानी आदि लई ॥ १४ ॥

तुलसी तत सारा अगम निहारा ।
गुरू पिया पद पार लई ॥ १५ ॥

महुँ पुनि गाई संत सुनाई ।
संत शब्द रस अगम कही ॥ १६ ॥

सब संत पुकारा महुँ पुनि लारा ।
सारा चारा पार गई ॥ १७ ॥

चौथा पद गाई संत सुनाई ।
सुरत सैल अज आदि लई ॥ १८ ॥

संतन कर भेदा जाने न वेदा ।
खेद करम की दूर भई ॥ १९ ॥

संतन की सरना दुख सुख हरना ।
बरना तुलसी तोल लई ।। २० ।।
संतन मुख भाषी अगम की आँखी ।
उन से ताकी तरक कही ।। २१ ।।
कोइ बूझे न संधा पड़ा जम फंदा ।
अंधा जग को बूझ नहीं ।। २२ ।।
संतन विधि गाई शब्द सुनाई ।
भई बानी सब गाय कही ।। २३ ।
शब्द जो गावै आँख न आवै ।
बिन सतसंगत भर्म सही ।। २४ ।।
छूटै सब टेका बूझै एका ।
यह संतन ने सार दई ।। २५ ।।
तुलसी गोहराई बूझ न पाई ।
बिन बूझे सब खान मई ।। २६ ।।
दीन निहारा संत पुकारा ।
शब्द विचारा पार भई ।। २७ ।।

।। सोरठा ।।

तुलसी शब्द विचार, फूलदास यह विधि सुनो ।
शब्द करै निरधार, सार पार पद लख पड़ै ।।

।। दोहा ।।

शब्द शब्द बहु भेद यह अभेद गति भाखिया ।
तुलसी ताकी धार शब्द निरख रस जिन पिया ।।

॥ चौपाई ॥

तुलसी शब्द संत जो भाषा । जिन २ संत जो गये अगाधा ॥
अपने अपने शब्द बनाये । अपनी अपनी साख सुनाये ॥
जो जो गये अगम के द्वारा । पंथ अगम के उतरे पारा ॥
पार जाय विधि सगरी भाखी । जो २ देखी अपनी आँखी ॥
अपनी देखी कही बखानी । आदि अंत जो जिन ने जानी ॥
कही संत और कही कबीरा । सब मिल कही एक विधि हीरा ॥
पहुँचे पहुँचे एक ठिकाना । बिन पहुँचे का और बखाना ॥
जो जो संत जो भये सनाथा । पहुँचे पार सार रस माता ॥
बरन न जाय संत गत न्यारी । मोरी मति कुछ नाहिं बिचारी ॥
संतन की गति कस २ गाई । दादू की कहूँ साख बताई ॥
दादू शब्द संत गति गाई । शब्द संत उन भाखि सुनाई ॥
उनकी निसा साखि दरसाऊँ । तुलसी उनकी अगम सुनाऊँ ॥

शब्द दादू साहिब

दादू जाने न कोई । संतन की गति गोई ॥टेक॥
अविगत अंत अंत अंतर पट । अगत अगाध अगोई ॥
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा । अगुन सगुन नहिं दोई ॥ १ ॥
अंड न पिंड खंड ब्रहमंडा । सूरत सिंध समोई ॥
निराकार आकार न जोती । पूरन ब्रह्म न होई ॥ २ ॥
उनको पार सार सोई पैहै । मन तन गति पति खोई ॥
दादू दीन लीन चरनन चित । मैं उनकी सरनाई ॥ ३ ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी कहै बुझाय, फूलदास सुन संत गति ।
दादू साख बताय, निसा बूझि कौ यह कही ॥

॥ चौपाई ॥

फूलदास सुनियो चित लाई । यह दादू की साखि बताई ॥
जो संतन ने देखा माहीं । रूप रेख बिन रहै अकाई ॥
तन भीतर जो लखा अलेखा । रूप रेख ना रहै अदेखा ॥
जा के रूप रेख कुछ नाहीं । सो वो देखा घट के माहीं ॥
पुनि दादू की साख बताऊँ । शब्द एक जो गाय सुनाऊँ ॥
जो जो संतन दिल में देखा । जिन जिन भाषा अगम अलेखा ॥

शब्द दादू साहिब

दादू दिल बिच देखा । रंग रूप नहिं रेखा ॥ टेक ॥
हद हद वेद कतेब बखाने । मैं कहा बेहद लेखा ।
मुल्ला शेख सैयद और पंडित । यह मुये अपनी टेका ॥१॥
राम रहीम करीमन केशो । हरि हजरत नहिं एका ।
वह साहब सबहिन से न्यारा । कोइ कोइ संतन पेखा । २॥
दादू दीन लीन होय पाया । क्या कहुँ अगम अलेखा ॥
जिन जिन जाना तिन पहचाना । मिट गया मन का धोखा । ३॥

॥ सोरठा ॥

जो देखा घट माहिं, जिन जिन संतन सब कही ।
रूप रेख नहिं ताहि, सो अदृष्ट अंदर लखा ॥

॥ चौपाई ॥

सब संतन ने पाया लेखा । जोई अगम पंथ जिन देखा ॥
जोइ जोइ संतन भाखि सुनाई । सो सब देखा अपने माईं ॥
बिन देखे नहिं संत पुकारा । देखे बिन कहें झूंठ लबारा ॥
फूलदास बूझौ मन माईं । संत कही जो कबीर गुसाईं ॥

संत कबीर के अंतर नाहीं। भिन्न कहै सो नरकै जाई ॥
जो जो संत गये निज धामा। सो कबीर ने कहा मुकामा ॥
चढ़े संत जो गगन ठिकाना। उनकी गति काहू नहिं जाना ॥
संत मते को दुइ कर जानै। ता ते पड़ै नरक की खाने ॥
संत की निन्दा करै बनाई। आदि अन्त भव भटका खाई ॥
संतन की गति भेख न जाना। संत बिना कहुँ नाहिं ठिकाना ॥
भेख भुलाना भौ के माहीं। रहैं काल बस जम की छाहीं ॥
मैं कुछ कही न निंदा भाई। जस जस देखा तस तस गाई ॥
मुख अपने निन्दा नहिं गाऊँ। और संत की साख सुनाऊँ ॥
औरौ और और पुनि गाऊँ। तिन तिन की में साख बताऊँ ॥
तुलसी संत भेष कर चेरा। यह भौ सिन्ध अनीति अनेरा ॥
तुलसी संत चरन की धूरी। दादू शब्द बताऊँ मूरी ॥
उनकी साखी शब्द बताऊँ। पुनि दादू की साख सुनाऊँ ॥
भेष भूल सब जग के माहीं। ता कारन यह शब्द सुनाई ।
भेष भुलान खान सुख कारन। तातें दादू शब्द पुकारन ॥

शब्द दादू साहिब

दादू भेष भुलाना। जग संग कीन पयाना ॥ टेक ॥
षट दर्शन पंडित और ज्ञानी। पढ़ि पढ़ि मुये पुराना ॥
परम हंस जोगी सन्यासी। वेद करत परमाना ॥ १ ॥
आतम ब्रह्म कहैं अपने को। सब में हमी समाना ॥
ता से भौजल पार न पावैं। अहं ब्रह्म मन माना ॥ २ ॥
मन विहंग की खबर न जानै। तन निहंग हैवाना ॥
जग जिज्ञास मोह मद माते। तासे बहु लिपटाना ॥ ३ ॥

वे साहब समर्थ हैं दाता । तिनको नहिं पहिचाना ॥
वाको भेद वेद नहिं पायौ । अगम पंथ नहिं जाना ॥ ४ ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी भेष भुलान, जान मान भौ में लसा ।
फँसा रस सार न जान, जानि कानि बूझी नहीं ॥

॥ चौपाई ॥

भेष भुलान सबै जग माई । आदि अंत की खबर न पाई ॥
जो कोई भेद कहै समझाई । भेष कान पर एक न लाई ॥
कपड़े रँगे भेष भये साधू । बूझै न वस्तु जो आदि अनादू ॥
दया जानि कोई भेद बतावै । तौ वह नगर रहन नहिं पावै ॥
गृही भेष सब मारि निकारै । कहें हमरा रोजगार बिगारै ॥
परमारथ नहिं बूझ गँवारा । पढ़ पढ़ बूड़े भौजल धारा ॥
याते संत मता नहिं पावै । ताते जिव भौ में रहि जावै ॥
कर्म बँधा जीव भरमें खाना । बिना संत नहिं लगे ठिकाना ॥
फूलदास सुन रेतीदासा । संत मिलैं तौ होय सुबासा ॥
और जो सुनौ जगत सब बौरा । भेष टेक में बूड़ न थोड़ा ॥
संत मता कहुँ देख न आवै । भेष मता सब जगत बुड़ावै ॥
ऐसी सोल पोल कहा कीजै । उपजें बिनसै नित २ छीजै ॥
ऐसी कहाँ कहाँ की कहिये । ता सों गुप्त मौन ह्वै रहिये ॥
को जग अजगुत सिर पर लेई । भूल पड़ी सब भेषन जेई ॥

॥ हाल मुसलमान साधू अली मियाँ का ॥

एक समय इक अचरज भइया । इक फ़क़ीर मक्के से अइया ॥
नाम अली तेहि जात फ़क़ीरा । रात रहे पुनि हमरे तीरा ॥

अल्ला कुह कुह करे नमाज़ा । हमरे माहिं देख मन लाजा ॥
फ़ारिग़ भये तब खाना खाया । ले आसन कुटिया में आया ॥
हमसे ख़ुदा ख़ुदा कर बोले । ख़ुदा नबी बिन कछू न तोले ।
पूछा अला नबी केहि ठांवा । उन पुनि लै असमान बतावा ॥
हम पुनि कहा तुम्हारे पासा । मुर्शिद मिले तो होय खुलासा ॥
हमरी बानी कान न लावा । तब दादू का शब्द सुनावा ॥
अली मियां सुन हक़्क़ इमाना । मुर्शिद दादू किया बखाना ॥
अन्दर अली भली कर मानौ । अल्ला अलिफ़ ज़बान बखानौ ॥

अली उवाच

भूल रसूल रमक दरसावौ । पैग़म्बर परमान बतावौ ॥
पैग़म्बर कहि भाखि सुनावौ । मस्जिद हक़ मक्का को गावौ ॥
कितनी कही इमान न लावा । ग़ज़ल एक उन भाखि सुनावा ॥
ख़ुदा ख़ुदा सब ख़लक़ बखाने । ख़ुदा बिना कहि एक न माने ।

॥ ग़ज़ल ॥

बन्दा बेहोश याद हर दम लावैं ।
तेरे बिन ख़ुदी ख़ूब कैसे भावै ॥
कीन्हो तैं आफ़्ताब ख़लक़ आफ़रीं ।
कल्मा बिन पढ़न कहै कुफ़र काफ़री ।
तुलसी यह अली ग़ज़ल गाय सुनाई ।
दादू दरवेश देस हमहूँ गाई ॥

तुलसीदास उवाच

॥ ग़ज़ल ॥

दिल के दरवेश इक दादू फ़क़ीरा ।
भाख कही साख शब्द मुर्शिद पीरा ॥ १ ॥

सुनिये मियां अली अलिफ़ बानी उनकी ।
रोज़ नमाज़ कही अंदर धुन की ॥ २ ॥
कलमा पढ़ ख़ुदा खोज अपने माईं ।
देखो तन बदन बीच भिश्त बनाई ॥ ३ ॥
तुलसी की कहन मियां दिल में लाओ ।
बदन बीच खोज यार अंदर पाओ ॥ ४ ॥

॥ सोरठा ॥

अली अजब दीदार, पार परख दादू कही ।
दिल दुरबीन निहार, सो विचार कह्यौ शब्द में ॥

॥ दोहा ॥

फ़हम फ़क़ीरी अरश की, मुकर देखि दुरबीन ।
चीन्ह चले उस राह को, रूह रहम लौ लीन ।

॥ सोरठा ॥

दादू दूर दराब, आब ताब पट अबर नहिं ।
अल्ला अलिफ़ मकान, अबर फाड़ पट राह लख ॥
दिल बिच अलिफ़ दिदार, श्याम शहर पर रूह लखो ।
चखो अर्श रस सार, यह बिचार दादू कही ॥

॥ चौपाई ॥

दरिया भी दादू बतलाई । अली मियां सुन साख सुनाई ॥
जो शराब दादू भर पीना । सो सुनकर के करो यक़ीना ॥
आब अलिफ़ जिनकी चलि आई । सो फ़क़ीर दरवेश कहाई ॥
उन क़ुरान का मग़ज़ सुनावा । भिश्त खोज ख़ुद ख़ुदा लखावा ॥
अब दादू का शब्द सुनाऊँ । परस पिया रस लखन लखाऊँ ॥

॥ शब्द दादू साहिब ॥

दादू दूर दराबी । पिय रस पियत शराबी ॥टेक॥
पीयत प्याला मन मतवाला । भोर भया उजियाला ।
खूबी खलक़ ख़ुदी होइ ख़्वाबी । अंदर खिल गई स्वाबी ॥ १ ॥
मक्का भिश्त हज्ज को देखा । अबरा आब अरु ताबी ।
अल्ला आदि नबी लख छूटा । रोज़ा निमाज़ अज़ाबी ॥ २ ॥
मलकुत नासुत जबरुत जाके । लाहुत हाहुत पागी ।
लै लगी लामुक़ाम रवि ही से । जगत जहान खराबी ॥ ३ ॥
दादू दग दीदार हिये के । चूं बेचूं बेज्वाबी ।
चौदह तबक रियाज़त बाज़ा । आया अर्श अराबी ॥ ४ ॥

॥ सोरठा ॥

अली मियां सुन साखि, दिले फ़हम बेदिल हुआ ।
मुये रूह से बाद, साथ स्वाल काफ़िर कहा ॥

॥ चौपाई ॥

अली मियां सुन हमरी बानी । गुन गुन मन में बहुत रिसानी ॥
कहि क़ुरान अल्ला मुख बानी । हिन्दू को काफ़र कर जानी ॥
स्वाल भाखि पुनि आसन लीन्हा । उठ कर चले फ़िकर मन कीन्हा ॥
हाथ पकड़ कर ग़ुसा उतारा । बैठे ज़मी ग़ुसा को मारा ॥
हम पर मेहर करो तुम साईं । अपने दिल में बूझौ भाई ॥
तुम ख़ुदाय का खोज न पावा । मिट्टी मस्जिद को सिर नावा ॥
जो मस्जिद तुम आप बनाई । ता मस्जिद में खोज लगाई ॥
कहो ख़ुदा तुम सबके माहीं । ऐसे क़ुरान किताब सुनाई ॥
अपने मुख से सब में भाखो । मिट्टी मस्जिद को फिर ताको ॥

समझौ अपने दिल के माहीं । ख़ुदा खोज खोजौ दिल माहीं ॥
पाँच यार मौहमद जो भाखा । आग ख़ाक जल पौन अकासा ॥
ता को खोजो अपने माहीं । बिन मुर्शिद कोइ खोज न पाई ॥
सब में ख़ुदा क़ुरान बतावै । करौ हलाल सो दर्द न आवै ॥
अपना क़ुफर चीन्ह नहिं भाई । हिंदू को काफ़िर बतलाई ॥
सुन कर अली मियां कुछ बूझा । यह तो ज्वाब ख़ूब कर सूझा ॥
ख़ुशी भये और ग़ुसा उतारा । है ख़ुदाय सब में इक प्यारा ॥
फिर हम से वे पूंछन लागा । कहौ ख़ुदाय सब माहिं विराजा ॥
अली कहै कुछ देख न आवै । खोजै ख़ुदा खोज नहिं पावै ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी कह मियां अली सुन, ख़ुदा मिश्त के द्वार ॥
दो अनार लटकत रहैं, कुञ्जी मुर्शिद हाथ ॥
अली मियां अचरज भया, कही बात सब सांच ।
तुलसी भेद बतलाइये, दीन होय मैं जाँच ॥

॥ दोहा ॥

कह तुलसी हम भेद बतावा । भिश्त के द्वार अनार लखावा ॥
यहि अनार पर सुरत लगाओ । खुल गया द्वार भिश्त तब पाओ ॥
तब तुलसी के क़दम उन लीन्हा । अली मियां आधीनी कीन्हा ॥
हुआ अधीन राह बतलाई । तब उठ मियां राह को जाई ॥
फूलदास बूझौ तुम मूला । हिन्दू तुरक भेद दोउ भूला ॥
भूला भेष काल भरमाया । काल अपर बल सबको खाया ॥
संत मते की राह न जानै । काल चाल विधि कालहि मानै ॥
जम फांसी में भेष भुलाना । केहि विधि पावै जीव ठिकाना ॥

यह जग माहिं फाँस जम डारा । संत बिना नहिं होय उबारा ॥
बारह मते काल ने कीन्हा । आदि अंत फांसी जीव दीन्हा ॥
सतयुग त्रेता द्वापर माहीं । और कलजुग की कहा बताई ॥
अनेक जुगन जुग फांस फंसानी । भेद न चीन्हा पड़े पुनि खानी ॥
जब निरगुण बैराट पसारा । सत्तनाम से मांग लबारा ॥
बारह मते मोहिं को दीजै । मोरा मता साध अस कीजै ॥
बारह मत की राह चलाऊँ । जा से जीव जगत उरझाऊँ ॥
ऐसे निरगुण मांगा भाई । काल जाल मत उन्हीं चलाई ॥
बारह माहिं भेष सब भूला । सो जग जाल सहे जम सूला ॥
निरगुण काल जग कीन्हे भेषा । चारो जुग जग बाँधी टेका ॥
भेष किया जग काल कराला । संत बिना नहिं छूटै जाला ॥
काल भेष जग भये अनेका । अपनी अपनी बाँधी टेका ॥
तासे तुलसी पंथ न कीना । जगत भेष भया काल अधीना ॥
तो जो कहे जीव निरवारा । सो सो फांसी सब ने डारा ॥
बिन आँखी सूझा नहिं भाई । बिना संत कहौ कौन लखाई ॥
चीन्हे संत तौ होय उबारा । नाहीं तौ बूढ़े भौ जल धारा ॥
जो कोई बारह मत को चीन्हा । काल रहै पुनि तास अधीना ॥
ता पर काल जाल नहिं डारा । जम ह्वै दीन ताहि की लारा ॥
संत मिलैं पुनि मारग पावै । ऐसे जीव लोक को आवै ॥
यह जग भेष काल बस होई । इनकी बात न मानौ कोई ॥
जो कोइ काल भेष पहिचाने । गत मत भेद संत कर जानै ॥
दस औतार निरंजन जाना । ब्रह्मा बिष्णु काल उतपाना ॥
वेद कतेब और फंद पसारा । यह सब काल जाल मत डारा ॥
या को जब चीन्है कोइ प्राणी । मत बारह की राह पिछानी ॥

पुनि बारह से भये अनेका । कहँ लग कहूँ पार नहिं जेका ।

॥ दोहा ॥

फूलदास बिनती करैं, स्वामी कहौ बुझाय ।
यहि विधि मो कौ लख परी, पुनि कबीर कहि गाय ॥

॥ सोरठा ॥

अनुराग सागर माहिं, कहि कबीर धर्मदास सों ।
हम पुनि देखा ताहि, स्वामी यह विधि सत्त है ॥

तुलसीदास उवाच

॥ सोरठा ।

तुलसी पूछै बात, फूलदास कहिये विधी ।
कस कबीर विधी भाख, काल मते बारा कहौ ॥

॥ चौपाई ॥

फूलदास यह भाखों साखी । बारह मते काल कस भाखी ॥
कस कबीर ग्रन्थन में गावा । सो बारह की विधी बतावा ॥
तुम ग्रन्थन मैं देखा आँखी । सो सब भाखि कहौ विधि ताकी ॥

॥ सोरठा ॥

पूछै तुलसी बात, कस कबीर ग्रन्थन कही ।
बारह मत विख्यात, काल चलाये जो जेही ॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी कहै कहौ पुनि भाई । फिर तुमको हम बर्ण सुनाई ॥
बारह भेद नाम गुण कहिये । भिन्न-भिन्न पुनि बर्ण सुनइये ॥
कस कबीर ने भाखि बताई । सो विधि तुम हमको समझाई ॥

फूलदास उवाच

॥ चौपाई ॥

फूलदास अस भाषा लेखा । कहि कबीर सो कहूँ विवेका ॥
तुमने बचन जो भाषि सुनावा । सो कबीर मुख अपने गावा ॥
तुम भाषा सत नाम से पावा । बारह मते काल ले आवा ॥
या में वा में अंतर नाहीं । ताकी विधि मैं बर्ण सुनाई ॥
यह कबीर मुख अपने कीन्हा । काल निरंजन को मत दीन्हा ॥
उन अपना खुद ज्ञानै भाखा । तुमने भक्ति भाव कर राखा ॥
दोनों विधी एक सम जानी । या में कछू भेद नहिं मानी ॥
बारह मते काल को दीन्हा । मन अपने परमाण जो कीन्हा ॥
यह तौ स्वामी सत्त जनाई । कहि कबीर ग्रंथन में गाई ॥
भाखा सोई सुनाऊँ लेखा । जोई कबीर ग्रंथन में देखा ॥
यह कबीर मुख अपने भाखी । बारह मते काल विधि ताकी ॥
धरम राय नीरंजन होई । बारह मते दीन हम सोई ॥
अस कबीर ग्रंथन में गाई । देखी जस विधि ताहि सुनाई ॥
१ प्रथम दूत मृत अँध कहावा । दास नरायन नाम धरावा ॥
काल अंस यह नाम नरायन । जीव फांस फंदा जिन लायन ॥
२ तिरमिर दूजा नाम बखाना । जात अहेरी कुफ़र कहाना ॥
३ दूत तीसरा भाखि सुनाऊँ । अंध अचेत ताहि कर नाऊँ ।
सुरत गुपाल नाम तेहि पावा । कह कबीर ऐसो विध गावा ॥
४ चौथा दूत भंग मन होई । झंगा मूल पंथ कहै सोई ॥
५ पांचवाँ दूत ज्ञान भंग नामा । परचा करन मंत्र को थामा ॥
६ मकरंद षष्टम दूत कहावा । नाम कमाली तास धरावा ॥

७ सप्तम दूत आदि चितभंगा । नाना रूप करै मन रंगा ॥
८ अष्टम दूत का नाम बताऊँ । अक्लभंग तास कर नाऊँ ॥
९ नवाँ दूत कर नाम बताऊँ । दूत विशंभर वर्ण सुनाऊँ ॥
१० अब मैं दसवां दूत बताऊँ । नकटा दूत ताहि कर नाऊँ ॥
ादश दूत नाम बतलाऊँ । दुगदानी तेहि वर्ण सुनाऊँ ॥
त नाम बतलाऊँ । हंसमुनी तेहि वर्ण सुनाऊँ ॥
बखाना । अनुराग सागर करत बयाना ॥
धि गावा । सो मैं तुमको भाखि सुनावा ॥
ाई । कस कस मता काल विधि पाई ॥
विधि नाम दूत कर कहिये ॥

द्वैत काल यह मन विधि गावा । मन मत द्वैत जगत सब आवा ॥
मन मत द्वैत वो राह न पाया । यह कबीर ने यों विधि गाया ॥
या मन की विधि २ समझाई । बारह दूत मन काल कहाई ॥
यह मत विधि सब कही बखाना । बारह नाम मनहिं के जाना
नरायनदास नर मन है भाई । यह विधि दास कबीर
मनमृत अन्ध दूत बतलाई । मन नित मृत्त
यह मन तिमिर जगत को लावा । या ते तिमि
मन जग अंध अचेत करावा । अंध अ
सुरत गुपाल नाम तेहि कहिया । सूरत
– मत भंग करे जग के

येहि विधि निशदिन सुरत लगाई । मन मैं इष्ट भरम नहिं लाई ॥
ऐसे सुरत द्वार पर खेला । श्याम सफ़ेदी न्यारी सेला ॥
श्याम लोक पुनि सेतहि दीपा । शंख चक्र मध पुनि इक सीपा ॥
वा के परे वंक गढ़ न्यारा । सन्मुख सैल मानसर पारा ॥
वा के परे त्रिवेनी घाटी । तासे निकरि अगम पुर बाटी ॥
कर अशनान अगम को धावै । तब साँचे सतगुरु को पावै ॥
चार कँवल द्वै भीतर माई । तामें पैठि द्वादस में जाई ॥
ताके परे पुरुष इक देखा । रूप रेख बिन अगम अलेखा ॥
अठ मेवा पुरुष को जाना । अठवाँ लोक तेहि संत बखाना ॥
कोउ कोउ आठ अटारी भाषो । कोउ कोउ आठ महल कहै जाको ।
संत बिना कोई भेद न पावै । ताते तुलसी यह विधि गावै ॥
यह बिधि भेष पंथ में नाहीं । संत मिलैं तौ पावे राही ॥
सूरत चढ़ै गगन को धावै । तौ अठमेवा पुरूष को पावै ॥
पांच वासना मन से जावै । तब मन राह पुरुष की पावै ॥
नरियर ऐनक मुकुर लगाई । मन मोड़े पुनि बास उड़ाई ॥
तीन गुनन का तिनका तोड़े । इन्द्री गौघृत रित का थोड़े ॥
कदली छेद बास चढ़ पारा । सेत के परे निरख चाहि द्वार ॥
सो पारी जाय पवन सो पावै । सेत सुपारी पुनि दरसाव ॥
यह विधि चौका जो कोइ जाने । सोई कबीर पंथ हम माने ॥
अस अनेक विधि कस कस कहिये । स्याना होय समझ लख लइये ॥
थोड़े में लख लेय सयाना बहुत बहुत क्या करूँ बखाना ।
सूक्षम बूझ भेद हम भाखा । थोड़े माँहिं भेद कह्यौ ताका ।
या से भेद संत कर न्यारा । कोइ बूझे संतन का प्यारा ।
जिन्ह पर संत दयाली कीन्हा । अगम बूझ कोई बिरले लीन्हा ॥

हम कुछ और भेद दरसावा जग अबूझ अँधरा समझावा ॥
जो ग्रंथन में गाय सुनाई । जीयत न मिलै मुये कस पाई ॥
मैं मति ठीक ठीक कर गावा । पंडित भेष जगत नहिं पावा ।
राम राम कह सब जग मरिया । आदि अंत मध कोऊ न तरिया ।
राम जो कहै पढ़ै भौ खानी । राम मरम मन आप न जानी ।
जो कोई करै राम की टेका । सो भौ भरमैं खानि अनेका ॥
तुलसी सत्त सत्त कह भाषी । जस जस सूझ जौन जेहि आंखी
फूलदास विधि सुनहु बनाई । येहि विधि तुलसी ग्रंथन गाई ॥
और कबीर दादू रैदासा । दरिया नानक अगम तमासा ॥
सूरदास नाभा अरु मीरा । औरौ संत अगम मति धीरा ॥
अरु अस बिधि सब साख बनाई । सो सो समन अगम गति गाई ॥
जस जस मैं पुनि भाख सुनावा । संत कृपा रज महुँ पुनि गावा ॥

॥ सोरठ ॥

फूलदास सुन बैन, आदि सैन अंतै कही ।
जो कबीर मत एन, संत सार लारै लई ॥
यह संतन मत सार, जो अगार अंदर लखा ।
चखा सुरत पद सार, आदि अंत विधि सब लखी ॥

॥ दोहा ॥

तोल बोल जेहि लख पड़ै, तुलसी निरख निहार ।
सार पार सूरति करै, तब लख लोक अगार ॥

बिलावल

तुलसी जग तरक तोल । बोल हेर हारा ॥ टेक ।
देखो दुर्ग काल जाल । माँगे स्वर्ग बास हाल ।
लिये मोह भर्म जाल । ख़्याल खोज पारा ।

तुलसी तन माहिं पैठ । छाँड़ो नर सकल टेक ॥
आदि और अंत देख । टेक एक सारा ॥
कहनी मन में विचार । तेरा कोउ ना निहार ॥
निरखो नैना पसार । वाही को अधारा ॥
तुलसी यह खूब अजूब । पावै मन मारा ॥ ६ ॥

मो को सब जक्त कहत । तुलसी के राम टेक ।
जाना निज एक अलेख । संतन के लारा ॥
जा के नहिं रूप रेख । देखा जो जाय अदेख ॥
ऐसा पद पार पेख । कोटि राम चेरा ॥
तुलसी तत कर विचार । राम खान घेरा ॥ ७ ।

तुलसी सतगुरु की दृष्ट । तासे निरखा अदृष्ट ॥
सत्तलोक पुरुष इष्ट । वे दयाल न्यारा ॥
मोरी लौ चरन लार । छिन-छिन निरखत निहार ॥
कीन्हा पद मूर पार । काल जाल पारा ॥
तुलसी यह जक्त भ्रष्ट । देख मैं दिदारा ॥ ८ ।

तुलसी यह अंड खंड । निरखा सगरा ब्रहमंड ॥
मारा मन काल डंड । छाँट छूंट न्यारा ॥
धरती और चंद सूर । निरखा सगरा ज़हूर ॥
लीन्हा रन खेत सूर । संतन मत सारा ॥
तुलसी दीदा निहार । भागे बट पारा ॥ ९ ॥

॥ सोरठा ॥

फूलदास सुन बात, जक्त भूल विधि यों कही ।
राम रहे भौ खान, जाकी आसा जग महीं ॥

टूक-टूक चूड़ीगर लीन्हा। घरिया कर्म आंच पुनि दीन्हा ॥
घरिया कर्म माहिं पुनि डारा। चूड़ी मनिया बहुर सँवारा ॥
लै बज़ार गलियन के माई। कर ख़रीद लै तिरिया जाई ॥
पुनि कमनीगर कहत पुकारे। नीच बुद्धि तिरिया के लारे ॥
ऐसी नीच जगत मत जानी। राम कांच जेहि अगम बखानी ॥
राम राम बिधि ऐसी जाना। चड़ी फूट कमनीगर आना ॥
तोड़ फोड़ भट्टी औंटाई। यह विधि राम कर्म भौ माहीं ॥
तन भट्टी कमनीगर काला। यह जग खान राम बेहाला ॥
ता कौ जपै जगत मन लाई। ता की कहो कौन गति गाई ॥
राम आप कर्मन बस परिया। कहौ तासे जग कस-कस तरिया ॥
राम-राम मन बूझौ भाई। मन को राम संत गुहराई ॥
देखो सब संतन की साखी। बूझि ज्ञान जब खुलि है आंखी ॥
मन जो राम को जपहि बनाई। मनहिं राम को गारी लाई ॥
मन से कहत बहुत यह खोटा। राम जपे का बँधिहौ पोटा ॥
मुख से मन को खोट लगावै। वही राम मन इष्ट बतावै ॥
राम इष्ट मन गारी दइया। तुम्हरा ज्ञान आहि कस भइया ॥
राम-राम जपिया दिन राती। मन को खोट कहो केहि भांती ॥
मन को खोट देव तुम गारी। इष्ट राम पर परिहै सारी ॥
अपने मन में ज्ञान विचारा। बूझ करौ सतसंगत लारा ॥
जग सब भूल भूल के माहीं। बुद्धि कर्म बस बूझ न आई ॥
भेष पंथ सब झार विचारा। बहु पुनि पड़े राम की लारा ॥
राम-राम पुनि आपहिं गावें। जो कोइ बूझि ताहि बतलावें ॥
उनसे बूझ राम कहँ होई। कहें सब माहीं रहा समोई ॥
राम-राम सब माहि बताई। चार खान चर अचर समाई ॥

संत सरन से उतरे पारा। सो तौ तुम निंदा कर डारा ॥
मुख से कहौ संत मत न्यारा। संत बिना नहिं होय उबारा ॥
संत गती न्यारी तुम भाखो। न्यारी कहि पुनि ताहि न ताको ॥
संत का भेद वेद से न्यारा। अस अपने मुख कहौ विचारा ॥
संत साध कहौ सबसे न्यारा। पुनि सुनि के नहिं मानै लबारा॥
न्यारी कहैं सत्त सत जाना। न्यारी सुनै देय नहिं काना।
न्यारी को न्यारी कर बूझे। न्यारी गुने सुने नहिं सूझै ॥
कह न्यारी मुख मीठी लागे। न्यारी सुने तभी उठ भागे ॥
अपने मुख से न्यारी भाखे। न्यारी सुन उठके कस भागे ॥
न्यारी सुन बूझै नहिं भाई। ता से कछू हाथ नहिं आई ।
यह अद्भुत सुनियो अज्ञाना। न्यारी कहै सुने नहिं काना ॥
भेख जगत की ऐसी रीती। ज्यों भेड़ी जग बहे अनीती ॥
या विधि से जग भेष भुलाना। संत मता ता से नहिं जाना ॥
फूलदास यह यौं विधि लेखा। परघट नहीं संत गति पेखा ॥
जो कोइ परघट कहत बुझाई। तो झगरा करने को धाई ॥
गुप्त मता संतन ने भाखी। कागज़ में मिलिहै नहिं साखी ।
साखी शब्द ग्रन्थ जो गावै। बिन सतसंग हाथ नहिं आवै ॥
यह झूंठे कागज़ के माहीं। ढूँढ़ ढूँढ़ सब जनम सिराई ॥
ज्यों बाज़ीगर डंका मारा। ठगन जक्त इन्द्र जाल पसारा ॥
ऐसी सब ग्रंथन की बानी। ता में ढूंढ़ै भेख अज्ञानी ॥
ता से इनके हाथ न आवै। गुप्त संत बिन कैसे पावै ॥
फूलदास मति बूझौ भाई। अस जग अंध कहा कहूँ गाई ॥
सब-सब विधि-विधि गाय सुनाई। फूलदास विधि भूल बताई ॥

उन सुन सांच मान मन धारी । वह उतरी जमुना के पारी ॥
अजामील अस पातकि होई । ता सुत नाम नरायन सोई ॥
मरत बार सुत नाम पुकारा । सो पहुँचा मुक्ती के द्वारा ॥
गनिका सुवा पढ़ावत तारी । राम राम कह उतरी पारी ॥
ध्रुव ने अटल तपस्या कीन्हा । पदवी राम अटल तेहि दीन्हा ॥
और गज अर्ध नाम गोहरावा । ता को तुर्त स्वर्ग पहुँचावा ॥
बालमीकि जपि उलटा नामा । राम राम कहि मुक्ति समाना ॥
महादेव द्वै अक्षर बासी । राम राम कह भये अविनाशी ॥
अस परचे जो राम के गावें । तुलसी पत्र लिखा इक ठावें ॥
राम राम इक पत्र लिखाया । या की विधि सब साखि सुनाया ॥
पत्र एक पर राम लिखाना । पलड़े माहिं धरा तेहि जाना ।
इक पलरा पर द्रव्य चढ़ावा । दूजा पलरा पत्र धरावा ॥
पलरा पत्र उठा नहिं भाई । राम राम की ऐसी बड़ाई ॥
महिमा राम राम अस गाई । नाम देव पुनि गाय जियाई ॥
येहि विधि साखी वेद पुकारे । शास्तर कहै राम ही तारे ॥
ऐसी विधि मिल राम की साखा । सोई राम तुमने नहिं राखा ॥
राम राम विधि तुमहूँ गावा । तुमहूँ राम राम समझावा ।
या का भर्म बहुत मोहिं आई । या की विधी विधी समझाई ॥
पहिले तुमहुँ राम कहि गावा । राम राम कहि भाषि सुनावा ॥
अब तुम मोड़ तोड़ सब डारा । राम-राम कहौ झूंठ पसारा ॥
या की विधी भेद समझाओ । राम छाँड़ि तुम केहि को ध्याओ ॥
सब जग साख तुम्हारी गावै । तुलसी राम राम समझावै ॥
या की स्वामी साख सुनैये । मोरे मन का भर्म मिटैये ॥
सो स्वामी मो को समझाओ । मोरे मन का भर्म छुड़ाओ ॥

यह तीनों ने जाल पसारा । राम काल ने सब जग मारा ॥
राम काल जो जपै बनाई । चर और अचर सभी चर खाई ॥
राम काल को जपि है भाई । जम बंधन भौ खान समाई ॥
रमतित काल जोत है ठगनी । तीन पुत्र उपजाये अपनी ॥
शास्तर वेद और दस औतारा । यह सब जानो काल पसारा ।
या के मत में परि है प्रानी । काल जाल यह जम की खानी ॥
तीन लोक जम जाल पसारा । वह दयाल पद इन से न्यारा ॥
वह दयाल समरथ है दाता । सो पद में कोउ संत समाता ॥
वा की राह संत से जाने । भेष जक्त दोउ नहिं पहिचाने ॥
संत मता कोऊ भेद न जाना । सूरत संत चढ़ै असमाना ॥
पहुँचे सूरत अगम ठिकाने । अपना आदि अंत घर जाने ॥
सूरत मिलै पुरुष को जाई । तिन को नाम संत है भाई ॥
संत राह सूरत कोइ पावै । और सब भेष खान में आवै ॥
आदि पुरुष को देखे नैना । तब अदृष्टि की बूझै सैना ॥
पतिव्रता सो पुरुष पिछाने । वा को इष्ट संत सब माने ॥
और इष्ट नहिं जाने भाई । राम इष्ट यह काल कहाई ॥
जो कोई राम पतीव्रत कीना । सो सब पड़े कर्म आधीना ॥
जिन दयाल से सुरत लगाई । सो पहुँचे वा पद के माहीं ॥
यह विधि संत कहैं गोहराई । अस अस संत सभी समझाई ॥
या का कोई भर्म ले आवै । बार बार चौरासी पावै ॥
संत बचन निंदा कर माना । ताते पड़े नर्क की खाना ॥
राम काल जो जपै बनाई । संत बचन निंदा ठहराई ॥
आप अबूझ बूझ नहिं लावै । संतन को नास्तिक ठहरावै ॥
यह सब भेष अंध भया भाई । संतन को निंदक ठहराई ॥

ता में सात जीव की चरचा । और चार बतलाओ परचा ॥
गिरे पड़े दस पांच अरु होई । यह सब साख बताऊँ सोई ॥
पोढ़-पोढ़ तौ सातै भइया । चार विधी परचे की कहिया ॥
चारों जुग जिव भये अनेका । सतजुग द्वापर त्रेता देखा ॥
कलजुग सुधाँ चार जुग पेखा । चार जुगन को पूछौं लेखा ॥
ता में सात जीव सब तरिया । सब जिव गये कहाँ जो मरिया ॥
राम-राम चारों जुग आवा । चारो जुग सबहिन मिल गावा ॥
निर्मल सतजुग जीव अनेका । राम-राम जप बांधी टेका ॥
सो तरे जीव अनेकन होई । तुमने सात जीव कहे सोई ॥
और जीव का भाखो लेखा । तरि गये होइ हैं जीव अनेका ॥
और नहीं थोड़े पुनि कहिये । सतजुग क्रोड़ जीव तौ चहिये ॥
सतजुग उजली बुधि मन होई । राम जपा निश्चय से सोई ॥
ता में क्रोड़ जीव तो चाही । यह तौ सात नाम भये भाई ॥
और अनेक राम जप जानी । सात तरे की हम नहिं मानी ॥
क्रोड़ जीव का नाम बतावै । तब हमरे मन साँची आवै ॥
उजला सतजुग सात बखाना । मैले कलि का कौन ठिकाना ॥
सतजुग सात निष्ट से गइया । कलजुग एक तरे नहिं भइया ॥
सतजुग में तुम सात बतावा । कलजुग कर्म निष्ट लिपटावा ।
जो कोई कहै राम से तरि है । यह झूंठी मन में नहिं धरिये ॥
राम रमा जुग चारो खानी । तरिहै या से कस-कस मानी ॥
तुमको कहत शरम नहिं आई । या को मन में बूझौ भाई ॥
येहि विधि तुम मन अपने बूझा । करि विचार तब परि है सूझा ।
क्रोड़ों ऋषि मुनि जपि पुनि होई । क्रोड़ों तपसी जानो सोई ।
क्रोड़ों इष्ट नेम पुनि करिया । कइ इक राम पतीव्रत धरिया ॥

गुनुवाँ उवाच

॥ चौपाई ॥

स्वामी एक मोहिं समझाई । गुजरी सिला को कहौ बुझाई ॥
सत भाखैं जल में जो तरिया । या विधि कहौ मोर मन भरिया ॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ।

या की मैं परत्यक्ष बताई । देखो जाय नज़र से भाई ॥
या की विधि मैं तुर्त बताऊँ । ज्यों बज़ार सौदा समझाऊँ ॥
जस बज़ार में सौदा लीन्हा । परखा तोल दाम तेहि दीन्हा ॥
अपने मन में साँची आई । पैसा दीन गांठ बँधवाई ॥
ऐसा परचा ततबर पेखो । अपने नैन नज़र से देखो ।
वहि पानी वहि पत्थर होई । वहि पुनि राम लिखाओ सोई ।
राम लिखो पत्थर के माहीं । पानी डार देख लो भाई ॥
जो पत्थर पानी नहिं बूड़ा । तौ तुम जानो राम अगूढ़ा ॥
पत्थर डूबा राम लिखे से । तौ तुम बुड़िहौ राम कहेसे ॥
ततबर कहो नज़र से पेखो । यह तौ आज नज़र से देखो ॥
संसै सोग सब झारि निकारो । लै पत्थर पानी में डारो ॥
जो जल पत्थर रह उतरानी । सिल गुजरी की सांची मानी ।
बूड़ा पत्थर राम लिखाना । अपने बूड़न की अस जाना ॥
एक विधी मैं और बताई । ता से देखो सत्त बनाई ॥
राम राम जेहि तुमहि दृढ़ाओ । लै पत्थर वहि हाथ लिखाओ ॥
सोइ पत्थर वोहि हाथ डरावै । जो बूड़ै झूंठे कर गावै ॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

या मैं राम बड़ा नहिं होई । यह तौ समय बड़ा भया सोई ॥
राम कहैं शिव नहिं अविनासी । वे भये समय भाव विधि वासी ॥
ये तौ समय बड़ा विधि भाषी । राम बड़ा कहो केहि विधि राखी ॥
राम बड़ा जब जानें भाई । जल में पत्थर आज तिराई ॥
उनको बड़ा जबै हम जानें । आज लिखे पत्थर उतरानें ॥
समय भाव पत्थर उतराई । कहो राम की कौन बड़ाई ॥
कहो राम से मुक्ति बताई । पुनि फिर ले समया ठहराई ॥
कभी राम को बड़ा बताओ । कबहीं ले समया ठहराओ ॥
एकहि बात सत्त ठहरावै । तब सत हमरे मन में आवै ॥

॥ दोहा ॥

एक कहै दूजी कहै, दो दो कहत बनाय ।
यह दो मुख का बोलना, घने तमाचे खाय ॥

॥ चौपाई ॥

कह तुलसी सुन गुनुवाँ भाई । समय बड़ा कै राम बड़ाई ॥
या में एक सत्त कर भाखो । एक बात झूठी कर राखो ॥
जो तुम कहौ राम सब तारा । परचा देखि न कहै लबारा ॥
ऐसी बड़ी राम गति जेही । समया झूठ राम कर देई ॥
राम से समय बड़ा है भाई । कहौ राम की कौन बड़ाई ॥
समया झूंठ राम कर डारे । ऐसी कहौ तौ पाँच विचारे ॥
समय राम की कला उड़ाई । तुम जपि मुक्ति कौन विधि पाई ॥
अपनी मुक्ति खोज नहिं पाओ । राम राम कहि जक्त दृढ़ाओ ॥

वालमीकि जप उलटा कहिया । उलटा जपत मुक्ति नहिं भइया ।।
सूधा जप जप जनम सिराना । मुक्ती को सपने नहिं जाना ।।
उलटा जपत मुक्ति जो होती । सुलटे मिलन जपा जप थोथी ।।
जीवत मुये मुक्ति नहिं पाई । यह जग झूंठी जाल बिछाई ।।
अजामील का भाखूँ लेखा । सुन गुनुवाँ अपने मन पेखा ।।
नारायण जेहि सुत का नामा । ताको मोह बाँध बस जामा ।।
अपने सुत तें मोह जो कीन्हा । मरते नाम नरायण लीन्हा ।।
मुक्ति भई अस कहैं बुझाई । या की विधी कहौं समझाई ।।
जग में पुत्र सबन के होई । राम कृष्ण नारायन सोई ।।
गोविंद नाम गुपाल मुरारी । येहि विधि पुत्र नाम जुग चारी ।।
मोह बंध वश नाम पुकारी । नाम पुत्र जग होत उबारी ।।
येहि विधि मुक्ति होत जो भाई । तौ भौ में जिव एक न जाई ।।
यह सब जानों झूंठी बाता । राम काल जीव कीन्ही घाता ।।
और तुमने ध्रुव मुक्ति बतावा । सो तौ गगन दृष्टि में आवा ।।
ध्रुव तारा की मुक्ति बताओ । सब तारों की विधि समझाओ ।।
तारा गगन मुक्ति जो होती । तारा टूट गिरे भुइँ जोती ।।
जो तुम ध्रुव को अटल बताया । गगन फूट ध्रुव कहाँ समाया ।।
पाँच तत्व का होइहै नासा । कहो ध्रुव ने कहँ कीन्हा बासा ।।

।। दोहा ।।

चंद मरै सूरज मरै, मरि है जमी आकाश ।
ध्रुव प्रहलाद भभीषना, परैं काल की फाँस ।

।। चौपाई ।।

सुन गुनुवाँ सब विधी बताई । यह सब की तोहि भाखि लखाई ।।
अब प्रहलाद का भाखूँ लेखा । सो तुम सुन कर करो विवेका ।।

॥ सोरठा ।

सुन गुनुवाँ यह बात, राम काल जग में फँसा ।
बसा कर्म के माहिं, लसा खान चारौं भरी ॥

गुनुवाँ उवाच

॥ चौपाई ॥

यह स्वामी सत-सत तुम भाखी । समझ पड़ा बूझी सब साखी ॥
यह सब काल जाल कर लेखा । अपने मन में किया विवेका ॥
जब गुनुवाँ बोला अस बानी । महूँ आप चरनन लिपटानी ॥
चरण दास मोहिं जानो चेरा । किरपा दृष्टि मोहिं तन हेरा ॥
मैं पुनि रहूँ चरण के लारा । जीव काज मम करो सुधारा ॥
अब मैं सरन आप की लीन्हा । राम काल धोखा यह चीन्हा ॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

अब तुलसी अस करी बखानो । हिरदे की संगत पहिचानो ॥
निस दिन हिरदे संग निहारो । हिरदे से होइ है निरवारो ॥
मन को थिर कर बूझो बाता । मन थिर बिना न आवै हाथा ॥
इंद्री मन थिर सूरत हेरो । तब भौजल से होय निबेरो ॥
यह हिरदे रहे हमरे पासा । तन मन विधी रहो यहि दासा ॥
यह सतसंगत सगरी जानी । या से प्रीत करो पहिचानी ॥
हिरदे का तुम भेद न पाई । सूरत पाय चरण चित लाई ॥
या से पिता भाव नहिं मानौ । सूरत सैल चरण में आनौ ॥
तब हिरदे बोला अस बानी । अब चालन घर कहूँ बखानी ॥
यह गुनुवाँ परशाद कराऊँ । पुनि सिर नाय चरण में आऊँ ॥

चल हिरदे पुनि घर को जाई। घर में त्रिया पुत्र द्वउ रहई ॥
रात वास घर अपने कीना। भोजन कर पुनि कीन्ही सैना ॥
पुनि-पुनि निसा गई अध राती। चढ़ गई सुरत सैल रस माती ॥
ता समै तिरिया कीन उपावा। रोग सोग अपना दुख गावा ॥
जब हिरदे मन कीन विचारा। यह ग्रह साल जाल है न्यारा ॥
अस मन में कुछ भई उदासी। पुनि तब से रहे हमरे पासी ॥

गुनुवाँ उवाच

॥ चौपाई ॥

तुलसी स्वामी विधी बताई। हिरदे की कछु अगम सुनाई ॥
हिरदे पार सार गति पाई। तुलसी स्वामी अगम लखाई ।

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

इतने में पंडित चलि आई। करी दंडवत परसे पाई ॥
श्यामा नैनू माना नामा। तीनों मिल बैठे वहि ठामा ॥
पुनि नैनू ने अर्ज़ विचारी। स्वामी तुम चरनन बलिहारी ॥
ब्राह्मण ज़ात मान मद भारी। स्वामी तुमने लीन उबारी ॥
अब मैं अपनी विधी बताऊँ। स्वामी सुनिये चित कर भाऊ ॥
चमके बीज और गगन दिखाई। अंदर स्वामी फैलत जाई ॥
पांच तत्त रँग भिन-भिन देखा। कारा पीरा सुर्ख़ सफ़ेदा ॥
और जंगाल रंग तेहि माहीं। यहि विधि पांचो तत दरसाई ॥
ता से सुरत भिन्न होय खेली। तेहि के आगे चली अकेली ॥
सहस कँवल से न्यारी जाई। सेत दीप द्वारे के माहीं ॥
ता से चली निकर होइ न्यारी। देखा सब ब्रहमंड पसारी ॥

ब्रह्मा या को अंक न चीन्हा । येहि विधि औतारन से भिन्ना ॥
आतम ब्रह्म से यह गति न्यारी । चीन्हें कोइ कोइ संत सँवारी ॥
संत चरण जोई जिव जाना । ता का आवागवन नसाना ॥
संत चरण जो चीन्हें नाहीं । पुनि पुनि ताका जनम नसाई ॥
अस अस समझ पड़ा यह स्वामी । यह दयाल किरपा से जानी ॥
संतन की गति अगम अपारा । हम पंडित लघु पावैं न पारा ॥

माना उवाच

॥ चौपाई ॥

माना कहै जोर दोउ हाथा । चरनन माहिं डारि कै माथा ॥
स्वामी हम कीन्ही अजगूती । मारन काज कीन मज़बूती ॥
तुम दयाल कछु स्वाल न भाषा । मन से द्रोह कछू नहिं राखा ॥
हम औगुण कहि कर २ भाषा । तुम स्वामी चित कछू न राखा ॥
लड़का कपूत बाप दे गारी । पितु औगुन तेहि नहीं बिचारी ॥
तेहि समझाय मिठाई दीन्हा । पुनि पुनि ताहि बोध कर लीन्हा ॥
येहि विधि भाँति भई गति मोरी । स्वामी से कीन्ही बरजोरी ॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

तुलसी माना मनहिं विचारी । या विधि होत आई जुग चारी ॥
संत जगत दोऊ के माहीं । या विधि आदि अंत चल आई ॥
अब या का बरतंत सुनाऊँ । विधि दृष्टान्त बहुर दरसाऊँ ॥
संत जगत तारन बतलावै । जग पुनि उनको मारन धावै ॥
परमारथ की राह बतावै । जग पुनि उनकी निंदा लावै ॥
साधू जीव करैं उपकारा । जिव मत हीन उनहिं को मारा ॥

वा बन में इक साध रहाई। बच्चा ले राखौ तहँ जाई ॥
साधू दया हीन नहिं होई। वह पाले पुनि वा को सोई ॥
यह कह हथिनी कीन्ही आसा। बच्चा डार कुटी के पासा ॥
साधू देख दया अति आई। बच्चा लीन कुटी के माहीं ॥
दया जान तेहि पालन कीन्हा। मोटा भया जात को चीन्हा ॥
चल्यो जहाँ सब हथिनी माहीं। गज मरकन्द देख तेहि भाई ॥
सम्मुख जुद्ध भया तेहि जाई। यह जवान वह बूढ़ा भाई ॥
गज मकरंद को मार गिराई। पुनि हथिनी में आप रहाई ॥
पुनि बच्चा यह कीन्ह विचारा। वहि साधू ने मोहिं उबारा ॥
साधू मार मिटाऊँ ख़्यालै। मो सरका दूजा नहिं पालै ॥
सो पुनि मोरा बैरी होई। ता से साधू मारौं सोई ॥
यह विचार साधू को मारा। यह विधि माना यह संसारा ॥
वै साधू बच्चा को पाला। सो पुनि भया ताहि कर काला ॥
दया जान उन कियो उबारा। वे बच्चा साधू को मारा ॥
साधू जग को यह विधि जाना। यह विधि चारों जुग परमाना ॥
काल बुद्धि सब जग के माहीं। संत दया विधि माने नाहीं ॥
वे दयाल विधि दया विचारा। कोइ कोइ जीव होय उपकारा ॥
सुन माना जग को व्यौहारा। आदि अंत अस रचा पसारा ॥
या में तुमको दोष न भाई। आदि अंत ऐसी चलि आई ॥

माना उवाच

॥ चौपाई ॥

तुम दयाल हो पूरे स्वामी। जीव काल बस तुम्हें न जानी ॥
तुम परमारथ राह बताई। जग करमी स्वारथ को धाई ॥

पुनि गुनुवाँ आया तेहि बारा । किया परनाम दंडवत सारा ॥
गुनुवां पूछै तुलसी स्वामी । एक विधी मैं कहूँ बखानी ॥
जीव राह की जुगत बताई । ता से छूटै जम की राही ॥
तुम दयाल सतगुरु हो स्वामी । जा से होय जीव कल्यानी ॥
यह भौजल जगत व्यौहारा । ता में जीव कर्म बस डारा

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

सुन गुनुवाँ यह जम की बाज़ी । जग संसार याहि में राजी ।
पंडित और समझें नहिं काज़ी । यह सब झूंठ काल मे राजी ॥
इनकी बात न चित पर दीजै । यह सब पाप पुन्य में भीजै ।
संत चरन की आसा कीजै । संत सरन मुक्ति कर लीजै ॥
यह जग में कुछ नाहीं भाई । सुपन जगत जीव भौ भरमाई ॥
राम कृष्ण दोनों बटमारा । शिव ब्रह्मा मिल फांसी डारा ।
या से संत राह धर लीजै । इनकी कहन चित्त नहिं दीजै ॥

गुनुवाँ उवाच

॥ चौपाई ॥

चरन बन्द तुम्हरी सरनाई । यह सब झूठ समझ में आई ॥
मोरे चित का भर्म उठावा । जब से चरन सरन में आवा ॥
हिरदे मोहिं विधी समझावा । भर्म भाव विधि सबहिं बतावा ॥
अब प्रभु कृपा दृष्टि मोहिं कीजै । जीव सरन अपना कर लीजै ॥
मैं तो स्वामी तुमको पाये । तुम्हरे चरन सरन चित लाये ॥
अब कोउ बात विधी नहिं भावे । सूरत तुलसी चरण समावे ॥
अब कुछ राह मोहिं को दीजै । यह गुनुवाँ अपना कर लीजै ॥

जग चौके को दूर बहाओ। सत चौका हिरदे में लाओ॥
जग चौके की झूंठी बाता। सत चौका संतन रस माता॥
जो चौका संतन ने जाना। सोई कबीरदास पहिचाना।
सो चौका तुमको बतलैहौं। ता से राह अगम की पैहौ।
जो कबीर ने राह बताई। सो चौके की कहूँ बुझाई॥
जो कबीर राह विधि गाई। सोई राह संत बतलाई॥
संत कबीर में अंतर नाहीं। या विधि से कोइ भर्म न लाई॥
सूरत चढ़ै संध जो पावै। सो कबीर सम चित में लावै।
वा में भिन्न भाव कोइ लैहै। कर्म भाव विधि नरकै जैहै॥
कहो कबीर ने अगम सुनाया। और संत नहिं वहँ से आया।
कहै कबीर अवगति से आये। और संत वह घर नहिं पाये॥
ऐसी विधि कोइ मन में आने। तौ पुनि परै नर्क की खानै॥
भेषी पंथ संत यह नाहीं। आदि अंत सो संत कहाई॥
आदि संत सब वहिं से आये। भेष पंथ में वह नहिं पाये।
भेष पंथ में ढूँढ़ौ भाई। या से तुमको नज़र न आई॥
अंदर की आँखी से देखो। तब पुनि संत नज़र से पेखो॥
तुमको नज़र कहाँ से आई। चौका पंथ माहिं उरझाई॥
चौका पंथ को दूर बहावै। तब वह राह नज़र में आवै॥
चौका पट्टा हाट बज़ारा। या से पड़ै कर्म की लारा॥
संतन का चौका विधि न्यारा। यह सब जानो हाट बज़ारा।
संतन का चौका विधि गाऊँ। संत कृपा से समझ बताऊँ॥
सुरत मोड़ नरियर को फोड़ो। अगम पान चढ़ धनुवां तोड़ो॥
राह विधी कोइ संत बतावै। जीवत अगम वस्तु को पावै॥
तुलसी कह इक शब्द लखाऊँ। ता में सब चौका विधि गाऊँ।

॥ दोहा ॥

फूलदास चौका विधी, सुरत नारियर मोड़ ।
पान अमर बीरा लखो, चखो अधर रस और ॥
रेतीदास तुमहूँ लखो, नरियर निरत निहार ।
निज अकाश पर पान है, बीरा है निज सार ॥

॥ चौपाई ॥

फूलदास अस सुरत लगाई । नरियर माहिं पंथ सोइ राही ॥
यही पंथ की राह जो पावै । पंथ कबीर ताहि कर नावै ॥
यही पंथ सूरज सो लावै । अगम अगोचर घर को पावै ॥
सूरत सैल करै असमाना । निज घर पहुँचे जाय ठिकाना ॥
या विधि पंथ संत दरसावै । तब सत सुरत समझ घर आवै ॥
आदि रु अंत पंथ पद जाना । भाखै सतगुरु संत बखाना ॥
सतसंग करै बूझ जब आवै । बूझै मत सतसंगत पावै ॥
जिन जिन चरन विधी विधि जाना । सो गुरु मत जानो परनामा ॥
पंथी राह रीत सब छूटै । मन की मान मनी सब टूटै ॥
दीन होय कर सेवै संता । जब लख पड़ै अगम पद पंथा ॥
जस कबीर ने भाखा चौका सो विधि करो मिटै जम धोखा ।
उन कहि बिधि जो बूझ बिचारै । सो घर पुनि पद पार निहारे ॥
संत गूढ़ मत गुप्त पुकारै । बूझै सतगुरु शब्द सुधारै ॥
जो कछु कहि उलट विधि बानी । सो बिन समझ बूझ नहिं जानी ॥
शब्द भाख सो भाख सुनावे । बिन सतगुरु कुछ हाथ न आवे ॥
सतगुरु मिलें बतावें भेदा । जब जम जाल मिटे मन खेदा ॥
संत बाग़ बन अंड पुकारा । सोइ ब्रह्मंड बाग़ बन सारा ॥
तन मन वृक्ष देख दृग अंडा । चढ़ कर सुरत निरख नौ खंडा ॥

॥ चौपाई ॥

फूलदास दिल समझ विचारो । अस अस भेद कबीर पुकारो ॥
मन पच बीस पाँच संग भूला । गुण तन वृक्ष बसै सहे सूला ॥
बेली सुरत अंड पर लागी । दिल दुरबीन चीन्ह सोइ भागी ॥
मन कर भर्म भूल थिर थावै । थिर कर सुरत निरत तत तावै ॥
नित नित ऐनक आँख दिखावै । लिख कागज़ पर अक्षर पावै ॥
निःअक्षर निरनै गत न्यारा । निरख संत सो करै विचारा ॥
रेतीदास रमज़ रस बूझा । जिन जिन को संतन मत सूझा ॥
यह मन काल बड़ा बल भूता । पाँच पचीस संग मज़बूता ॥
तीन गुनन तन मन बिच राजै । चल कर सुत मन विष रस साजै ॥
ता से थिर कर सुरत लगावै । कंज कँवल विधि बिच ठहरावै ॥
पल २ सूरत सिखर निहारे । लील गिरी पर समझ सिधारे ॥
रवि रज किरण गगन के पारा । सूरत सतगुरु ऐन निहारा ॥
सिखर निकर नभ द्वारे माई । सेता शहर अटारी जाई ॥
श्याम कंज सुत दूर बहाई । द्वै दल कँवल केल हिये आई ॥
सरवर गिरजा गुरु पद माई । कंज कँवल तज पदम सुहाई ॥
लघु दीरघ दल चार विराजै । सतगुरु सुरत मीन जहँ राजै ॥
फूलदास यह लख लख बैना । सूरति द्वार पार की सैना ॥
या से परे आदि घर न्यारा । या से संत अंत दरबारा ॥
जिन सतगुरु की सैन विचारी । सो गत बूझै अगम अपारी ॥
यह मत संत पंथ नहिं भेखा । खोज खोज पच मुऐ अनेका ॥
सुरतवंत गुरु सैन लखावैं । सो चेला सतगुरु से पावै ॥
पदम मध्य सत सत गुर धामी । सूरत सिमट शब्द अलगानी ॥
जिमि सागर बागर भया सिंधा । सलिता समुद मिले जिम बुंदा ॥

तुलसीदास उवाच

॥ दोहा ॥

तुलसी विधि पहिचान के, दीन्हा पंथ लखाय ।
सुरत बांध असमान पर, निज घर पहुँची जाय ॥

छन्द

तुलसी विधि गाई अगम लखाई ।
फूलदास विधि राह लई ॥ १ ॥
रेती अति दासा सुरत निवासा ।
तिल में बासा जुगत सही ॥ २ ॥
राती और दिवसा छिन छिन बासा ।
सुरत अकाशा निरत रही ॥ ३ ।
मन सुरती लागी नेक न भागी ।
निस दिन जागी ठहर तहीं ॥ ४ ॥
रेती अरु फूला स्वामी अनुकूला ।
सूल बन्ध सब काट दई ॥ ५ ॥
मनहीं बुधि पाई भूल नसाई ।
स्वामी सहाई बांह गही ॥ ६ ॥
मन के भ्रम भागे थिर होय लागे ।
कुछ अभिलाखा नाहिं रही ॥ ७ ॥
मन की व्रत चेती छाँड़ अचेती ।
सेत द्वार पर लाग रही ॥ ८ ॥
तुलसी कह कहिया अगम लखइया ।
चरण पाय सुत पाग रही । ९ ॥

तुलसीदास उवाच

॥ चौपाई ॥

कहि तुलसी उन सत संत कहिया । मैं मति हीन बुद्धि नहिं रहिया ॥
मैं तो सब चरनन को दासा । मैली बुद्धि नीच मोरि आसा ॥
तुम्हरे चरण मोर निरवारा । पकड़ हाथ करिहौ निस्तारा ॥
मैं औगुण की खान अपारा । सूरत संत चरण की लारा ॥
मोर निबाह तुम्हारे हाथा । अब तौ लगौं चरण के साथा ॥

प्रियेलाल उवाच

॥ चौपाई ॥

हे स्वामी अस अस कस भाखौ । हम जग जीव चरण में राखौ ॥
काम अरु क्रोध लोभ के माते । विष रस भोग फिरैं संग साथे ॥
यह जग जाल काल दिन राती । कर्म भाव भरमें संग साथी ॥
हम चहिले के जीव अनीती । छूटैं तुम चरनन की प्रीती ॥
श्री भगवानजी कहत पुकारा । मैं तो सदा संत की लारा ॥
गीता में अरजुन से भाखा । मोसे बड़ा संत को राखा ॥